इग्नू
जन-जन का
विश्वविद्यालय

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

BSKC 107

भारतीय सामाजिक संस्थान और राज्य व्यवस्था

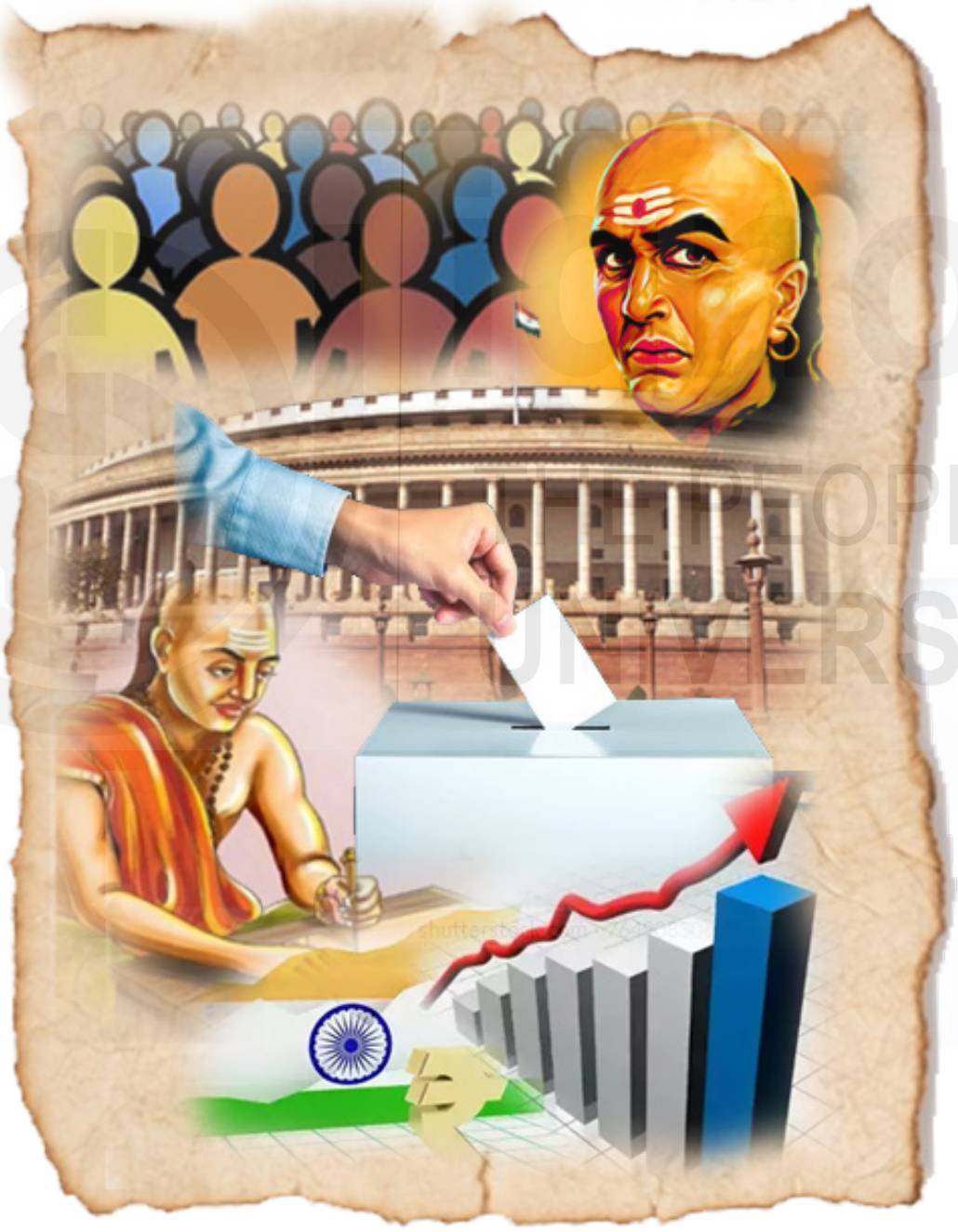

BSKC-107
भारतीय सामाजिक संस्थान और राज्य व्यवस्था

भारतीय सामाजिक संस्थान और राज्य व्यवस्था

खण्ड 1	भारतीय सामाजिक संस्थान : प्रकृति और अवधारणा	7
खण्ड 2	सामाजिक व्यवस्था	73
खण्ड 3	भारतीय राज्यव्यवस्था : उद्‌भव और विकास	121
खण्ड 4	भारतीय राज्यव्यवस्था के प्रमुख विचारक एवं सिद्धांत	159

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. रमेश कुमार पाण्डेय पूर्व कुलपति श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ नई दिल्ली	प्रो. रमाकान्त पाण्डेय निदेशक, मुक्त स्वाध्याय पीठ राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान नई दिल्ली	प्रो. आनन्द कुमार श्रीवास्तव अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, कला संकाय, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
डॉ. देवेश कुमार मिश्र सहायक प्रोफेसर मानविकी विद्यापीठ, इग्नू नई दिल्ली	डॉ. रंजन कुमार त्रिपाठी प्रोफ्रेसर, संस्कृत विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली	

पाठ्यक्रम संयोजक एंव सम्पादक

प्रो. कौशल पवार
अनुशासन, मानविक विद्यापीठ इग्नू, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

पाठ लेखक	इकाई संख्या
डॉ. प्रमोद कुमार सिंह, संस्कृत विभाग, मैत्रेयी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली	खण्ड 1 इकाई (1, 2, 3, 4)
डॉ राजमंगल यादव, सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग, रामजंस महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली	खण्ड 1 (इकाई 5, 6)
डॉ उमाशंकर, सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली	खण्ड 2 (इकाई 7, 9, 10)
प्रो. रमाकान्त पांडेय, केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर परिसर, जयपुर **एवं** प्रो. कौशल पंवार, संस्कृत अनुशासन, मानविकी विद्यापीठ, इग्नू	खण्ड 1 (इकाई 8)
डॉ रमण मिश्र, सहायक प्राध्यापक, शिक्षाशास्त्र विभाग, केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, भोपाल परिसर	खण्ड 3 (इकाई 11, 12)
डॉ इशरत सुल्ताना, जामिया मिलिया इस्लामिया, विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	खण्ड 3 (इकाई 13)
प्रो. कौशल पंवार, संस्कृत अनुशासन, मानविकी विद्यापीठ, इग्नू	खण्ड 4 (इकाई 14, 15, 16)

सचिवालयीय सहयोग

श्री शशि रंजन आलोक, सहायक कार्यपालक (डी.पी), मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

सामग्री निर्माण

श्री तिलक राज
सहायक कुलसचिव
सा. नि. एवं वि. प्र.,इग्नू, नई दिल्ली

मार्च, 2023

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2023

ISBN-

सर्वाधिकार सुरक्षित, इस कार्य का कोई भी अंश इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्ततु करने की अनुमति नहीं है।

मानविकी विद्यापीठ एवं इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के बारे में विश्वविद्यालय कार्यालय मैदान गढ़ी नई दिल्ली से अधिक जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की आरे से कुलसचिव, सामग्री निर्माण एवं वितरण प्रभाग, इग्नू द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित

लेजर टाइप सेटिंग : टेसा मीडिया एण्ड कंप्यटूर, C-206, A.F.Enclave-II, नई दिल्ली

मुद्रक :

विषय सूची

खण्ड 1	**भारतीय सामाजिक संस्थानः प्रकृति और अवधारणा**	**7**
इकाई 1	भारतीय सामाजिक संस्थानः परिभाषा और विषय–क्षेत्र	9
इकाई 2	भारतीय समाज पर प्रभाव (बौद्ध धर्म का प्रभाव, इस्लाम का प्रभाव, पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव)	18
इकाई 3	सामाजिक परिवर्तन (वैदिक काल से आधुनिक काल)	25
इकाई 4	सामाजिक परिवर्तन के स्रोत (वैदिक साहित्य, सूत्र साहित्य, पुराण, रामायण, महाभारत, धर्मशास्त्र, बौद्ध साहित्य, साहित्यिक रचनाएँ, अभिलेख, विदेशी लेखकों के यात्रा वृतांत आदि)	30
इकाई 5	धर्मशास्त्र सामाजिक संस्थानों के अध्ययन की एक विशेष शाखा के रूप में	37
इकाई 6	धर्म के स्त्रोत व विविध प्रकार (मनृस्मृति 2/12, 6/92, 10/63, याज्ञवल्क्य स्मृति 1/1, 7/3, विष्णु पुराण 2/16–17)	57
खण्ड 2	**सामाजिक व्यवस्था**	**73**
इकाई 7	सामाजिक व्यवस्था के आधारः आश्रमव्यवस्था, महायज्ञ, पुरुषार्थ, वर्ण एवं जाति व्यवस्था (ऋ. 10/90/12, महाभारत शान्तिपर्व 72/3–8 एंव जाति व्यवस्था, भ.गी. 4/13, 18/41–44, मनु, 10/64 इत्यादि)	75
इकाई 8	षोडश संस्कार और मूल्य	91
इकाई 9	स्त्रियों की स्थिति (महाभारत अनुशासनपर्व 46/5–11, सभा पर्व 69/4–13, वराहमिहिर की बृहत् संहिता में नारी–प्रशंसा अध्याय 74/1–10)	107
इकाई 10	परिवार और विवाह	114
खण्ड 3	**भारतीय राज्यव्यवस्थाः उद्भव और विकास**	**121**
इकाई 11	वेदकालीन राज्यव्यवस्था	123
इकाई 12	उत्तर वैदिक काल में राज्यव्यवस्था	132
इकाई 13	कौटिल्य अर्थशास्त्र में कल्याणमय राज्य का प्रारूप	140
खण्ड 4	**भारतीय राज्यव्यवस्था के प्रमुख विचारक एवं सिद्धांत**	**159**
इकाई 14	भारतीय राजनीति के महत्वपूर्ण विचारक व विचार–मनु, कौटिल्य और कामन्दक	161
इकाई 15	भारतीय राजतंत्र के महत्वपूर्ण विचारक व विचार– शुक्राचार्य (शुक्रनीति प्रथम अध्याय 1–20), सोमदेवसूरी (नीतिवाक्यामृत द.स.–9, ज.स.19/1.10) और महात्मा गाँधी, इन्द्र (रचित गाँधी गीता–पंचम अध्याय 1–25)	175
इकाई 16	राज्यव्यवस्था के विविध सिद्धांत–सप्तांग सिद्धान्त, मण्डल सिद्धांत, षाड्गुण्य सिद्धान्त, चतुर्विध उपाय, त्रिवर्ग,	197

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

पाठ्यक्रम परिचय

बी.ए. आनर्स संस्कृत पाठ्यक्रम के अन्तर्गत आप BSKC-107 'भारतीय सामाजिक संस्थान और राज्यव्यवस्था' नामक पाठ्यक्रम का अध्ययन करने जा रहे हैं। भारतीय सामाजिक संस्थान और राज्यव्यवस्था का यह पाठ्यक्रम 4 खण्डो में विभाजित है। इस पाठ्यक्रम में कुल 16 इकाइयाँ हैं। यह पाठ्यक्रम 06 क्रेडिट का है। इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य आपको भारतीय सामाजिक संस्थानों की प्रकृति एवं अवधाराणाओं से परिचित करवाना है जिसके आधार पर आप भारत की सामाजिक व्यवस्था, उसमें हुए सामाजिक परिवर्तन, धर्मशास्त्रीय सामाजिक संस्थानों, षोडश संस्कार और उनके मूल्य तथा भारतीय राज्यव्यवस्था के उद्भव और विकास एवं प्रमुख विचारकों तथा उनके सिद्धांतों को समझने की क्षमता का विकास कर सकें।

इस पाठ्यक्रम के प्रथम खण्ड में आप भारतीय सामाजिक संस्थानों की प्रकृति एवं अवधारणाओं का अध्ययन करेंगे। इस खण्ड की छः इकाइयॉ हैं। प्रथम खण्ड की इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर इस पाठ्यक्रम के प्रथम खण्ड की छः इकाइयों में आप भारतीय सामाजिक संस्थानों की परिभाषा और विषय क्षेत्र, भारतीय समाज पर विभिन्न धर्मों का प्रभाव, वैदिक काल से आधुनिक काल तक हुए सामाजिक परिवर्तनों का अध्ययन करेंगे तथा सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न स्रोतों का भी अध्ययन करेंगे। धर्मशास्त्रीय सामाजिक संस्थानों के अध्ययन की शाखा, धर्म के स्रोत एवं विविध प्रकारों का अध्ययन करेंगे।

दूसरा खण्ड सामाजिक व्यवस्था पर आधारित है। इस खण्ड में चार इकाइयाँ हैं। प्रथम इकाई में सामाजिक व्यवस्था के आधार रहे आश्रमव्यवस्था, महायज्ञ, पुरुषार्थ एवं वर्ण और जाति–व्यवस्था का अध्ययन करेंगे। षोडश संस्कारों और मूल्यों का अध्ययन करते हुए स्त्रियों की स्थिति एवं परिवार और विवाह संस्था को विस्तार से जान सकेंगे।

तीसरा खण्ड भारतीय राज्यव्यवस्था के उद्भव और विकास से सम्बन्धित है। इस खण्ड में तीन इकाइयाँ हैं जिसमें आप वेकदकालीन राज्यव्यवस्था का विस्तार से अध्ययन करेंगे। उत्तर वेद कालीन में राज्यव्यवस्था का स्वरूप कैसा था? उसे समझेंगे। कल्याणमयी राज्य का प्रारूप कौटिल्य अर्थव्यवस्था पर आधारित है जिसके अध्ययन के लिए इस इकाई में विस्तार से बताया गया है इसे पढकर आप समझने में सक्षम होंगे।

भारतीय राज्यव्यवस्था के प्रमुख विचारक एवं सिद्धांत का वर्णन इस पाठ्यक्रम के चतुर्थ खण्ड में दिया गया है जिसे तीन इकाइयों के माध्यम से राज्य–व्यवस्था के बारे में विस्तृत रूप से समझाया गया है। भारतीय राजनीति के महत्वपूर्ण विचारक मनु, कौटिल्य और कामांदक के बारे में तथा उनके विचारों के बारे में स्पष्ट किया है तथा शुक्राचार्य, सोमदेव सूरी, और महात्मा गांधी की प्रमुख रचनाओं के माध्यम से उनके सिद्धांतों को स्पष्ट किया गया है। सप्तांग सिद्धान्त, मंडल सिद्धांत, चतुर्विध उपाय, त्रिवर्ग आदि राज्यव्यवस्था के विविध सिद्धांतों को समझने के लिए इस खंड में विस्तार से बताया गया है जिसका अध्ययन करके शिक्षार्थी भारतीय सामाजिक संस्थान व राज्यव्यवस्था का समयक रूप से अध्ययन करेंगे।

भारतीय ज्ञान परंपरा को प्राचीन भारतीय सामाजिक संस्थानों में वर्णित राज्यव्यवस्था के स्वरूप को विस्तृत रूप से मनुस्मृति, महाभारत, आदि ग्रंथों के माध्यम से स्पष्ट किया गया है। इस दृष्टि को ध्यान में रखकर इस पाठ्यक्रम में भारतीय सामाजिक

व्यवस्था और राज्यव्यवस्था को सम्मिलित किया गया है। आशा है कि BSKC-107 भारतीय सामाजिक संस्थान और राज्यव्यवस्था' का यह पाठ्यकम आपको प्राचीन सामाजिक व्यवस्था, राज्यव्यवस्था, धर्मशास्त्रीय सामाजिक संस्थान, षोडश संस्कार, धर्मशास्त्रों में स्त्रियों की स्थिति, वेदकालीन राज्यव्यवस्था और उत्तर वैदिक काल की राज्यव्यवस्था, प्रमुख विचारकों एवं सिद्धांतों को जानने व समझने में सहायक होगा।

अतः पाठ्यक्रम की अध्ययन सामग्री निम्न ढंग से प्रस्तुत की गई है–

भारतीय सामाजिक संस्थान प्रकृति और अवधारणा	–	6 इकाइयाँ
सामाजिक व्यवस्था	–	4 इकाइयाँ
भारतीय राज्यव्यस्था : उद्‌भव और विकास	–	3 इकाइयाँ
भारतीय राज्यव्यवस्था के प्रमुख विचारक और सिद्धांत	–	3 इकाइयाँ
कुल	**–**	**16 इकाइयाँ**

शुभकामनाओं के साथ!

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

खण्ड 1
भारतीय सामाजिक संस्थानः प्रकृति और अवधारणा

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 1 भारतीय समाजिक संस्थान : परिभाषा और विषय क्षेत्र

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 भारतीय समाजिक संस्थान

1.3 भारतीय समाजिक संस्थान का विषय क्षेत्र

- 1.3.1 घर–परिवार की अवधारणा
- 1.3.2 विवाह–प्रथा
- 1.3.3 धार्मिक विधि–विधान
- 1.3.4 वर्णाश्रम व्यवस्था
- 1.3.5 जातिव्यवस्था
- 1.3.6 शिक्षा–व्यवस्था
- 1.3.7 राजनीतिक रचना
- 1.3.8 आर्थिक संरचना
- 1.3.9 विविधता में एकता

1.4 सारांश

1.5 शब्दावली

1.6 अभ्यास / बोध प्रश्न

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का मुख्य उद्देश्य समाज की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए भारतीय सामाजिक संस्थान की परिभाषा एवं इसके विषयक्षेत्र का विवेचन करना है। इसके अध्ययन से पाठकगण भारतीय समाज एवं सम्बन्धित संस्थानों के विभिन्न पहलुओं से सुपरिचित हो सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति पूरे विश्व में उन्नत है। भारत एक बहुभाषा एवं बहु संस्कृति वाला देश है। यहाँ पर अनेक धर्म, वर्ण, जाति, बहुविध सभ्यता एवं विविध नस्ल के लोग विभिन्न भूभागों में निवास करते हैं। अतः भारतीय समाज का परिगणन विश्व के जटिलतम समाजों में किया जाता है। किन्तु अनेक भाषा, बहुविध सभ्यता एवं संस्कृति वाले इस देश की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यहाँ का समाज अनेकता में एकता तथा विभिन्नता में समानता लिए हुए है। भाषा, धर्म, जाति इत्यादि में भिन्नता होने पर भी यहाँ का समाज सामंजस्य का सर्वोत्तम निदर्शन है और पारिवारिक ढांचा का उत्कृष्ट उदाहरण है। भाईचारा एवं आपसी मेल–जोल की जैसी भावना यहाँ दिखलाई पड़ती है,

वैसा अन्यत्र सर्वथा दुर्लभ है। समस्त विश्व को अपना कुटुम्ब समझना भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता है – **वसुधैव कुटुम्बकम्।** प्रस्तुत इकाई के माध्यम से समाज का अर्थ, सामाजिक संस्थान की परिभाषा एवं विषयक्षेत्र को सुस्पष्ट करते हुए भारतीय समाज में सन्निहित घर–परिवार की अवधारणा, विभिन्न धार्मिक– विधिविधान, शिक्षाव्यवस्था, जाति व्यवस्था, वर्णाश्रम व्यवस्था, राजनीतिक एवं आर्थिक संरचना, विविधताओं में सामंजस्य की भावना इत्यादि विषयों पर विस्तृत विमर्श किया गया है।

1.2 भारतीय समाजिक संस्थान

सामाजिक संस्थान से अभिप्रेत है – समाज को नियन्त्रित कर व्यवस्थित स्वरूप प्रदान करने वाले संस्थान। समाज पद संस्कृत भाषा से लिया गया है, जो सम् उपसर्गपूर्वक गत्यर्थक अज् धातु से घञ् प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ सभा, मिलन, मण्डल, समुच्चय, दल, समिति, परिषद् इत्यादि होता है। इस प्रकार व्यक्तियों का समूह, सम्मिलन अथवा दल समाज कहलाता है। समाज वस्तुतः व्यक्तियों का समूह है, जो उद्देश्य विशेष से आपस में मिलकर आगे बढ़ता है। इस समाज को नियमित एवं नियन्त्रित करने का कार्य सामाजिक संस्थान के द्वारा होता है। बुद्धिजीवी जन–समूह मिलकर विभिन्न सामाजिक नियमों और उनके सुचारू क्रियान्वयन हेतु विविध संस्थानों का विनिर्माण करते हैं। ये सामाजिक संस्थाएं ही प्रतिबन्ध एवं नियन्त्रण, दण्ड एवं पुरस्कार के द्वारा समाज को संयमित कर व्यबस्थित स्वरूप प्रदान करते हैं। सामाजिक संस्था ही वह प्रारम्भिक व्यवस्था है, जिसके अनुसार समाज में रहने वाले व्यक्तियों को अनुचित आचरण के लिए प्रतिबन्धित अथवा दण्डित किया जाता है, तथा सद्कर्मों के लिए पुरस्कृत भी किया जाता है।

1.3 भारतीय समाजिक संस्थान का विषयक्षेत्र

कानून सम्मत विधि–विधानों के अनुसार व्यक्तियों एवं तत्समूहों को नियमित करने वाले संस्थान सामाजिक संस्थान हैं। सामाजिक संस्थान का विषयक्षेत्र अत्यन्त विस्तीर्ण है। परिवार इसकी सबसे छोटी इकाई है। सामाजिक संस्थान के अन्तर्गत घर–परिवार के अलावा, नाते–रिश्तेदार, विवाह–नियम, धार्मिक विधि–विधान, जातिव्यवस्था, वर्णाश्रम व्यवस्था, शिक्षा–व्यवस्था, राजनीतिक एवं आर्थिक संरचना तथा विभिन्न विविधताओं में सामंजस्य की भावना इत्यादि का परिगणन किया जाता है। सम्प्रति भारतीय सामाजिक संस्थानों में समाहित इसके विविध विषयक्षेत्र का संक्षिप्त एवं सारगर्भित विवेचन किया जा रहा है –

1.3.1 घर–परिवार की अवधारणा

घर–परिवार के अन्तर्गत माता–पिता, भाई–बहन, पति–पत्नी, पुत्र–पुत्री इत्यादि समाहित होते हैं। दादा–दादी, चाचा–चाची, ताया–ताई तथा इनसे सम्बद्ध अन्य जन भी वस्तुतः घर–परिवार में ही परिगणित होते हैं। संसार में नवागन्तुक का परिवार ही उसकी प्रथम पाठशाला है। प्रारम्भिक अवबोध का आधार परिवार ही है। व्यक्ति अपने जीवन का प्रथम ज्ञान अपनी माता से प्राप्त करता है। पिता बालक के ज्ञान का परिमार्जन करता है। माता–पिता ही उसके आरम्भिक शिक्षक होते हैं। जिससे वह जीवनोपयोगी अनेकानेक ज्ञान के साथ उसके व्यावहारिक उपयोग को सीखता है। मनुष्य के अधिकांश क्रिया–कलाप का आधार परिवार ही है। उसके सुख–दुःख का सबसे बड़ा साथी एवं उन्नति हेतु सबसे बड़ा प्रेरक परिवार ही है। देखा जाए तो

परिवार ही सबसे नैसर्गिक सामाजिक संस्था है। नाते–रिश्तेदार भी परिवार के दूरस्थ अनुभाग हैं। इसमें नाना–नानी, बुआ–फूफा, मामा–मामी इत्यादि को शामिल किया जाता है। भारतीय परिवार का स्वरूप समग्र विश्व के लिए अनुकरणीय है। जिस तरह से यहाँ एक परिवार के लोग आपसी सुख–दुःख में सम्मिलित होते हैं, साथ देते हैं और मिल–जुलकर हर समस्या का निदान करते हैं, वह निःसन्देह एक सुदृढ़ एवं स्तुत्य परम्परा है। भारतीय पारिवारिक स्वरूप दो रूपों में दृष्टिगोचर होता है – संयुक्त परिवार एवं एकल परिवार।

संयुक्त परिवार – ऐसे परिवार जिसमें एकाधिक पीढ़ियां अर्थात् रक्त–सम्बन्धी जन एक साथ रहते हैं, साथ–साथ भरण–पोषण करते हैं, प्रत्येक सुख–दुःख में साथ रहते हैं, साथ–साथ विकास करते हैं, और अपनी विभिन्न आवश्यकताओं को पूर्ण करते हैं, वे संयुक्त परिवार से निर्दिष्ट होते हैं। इसमें एक से अधिक परिवार मिलजुलकर एकसाथ रहते हैं। भारत में संयुक्त परिवार की परम्परा अति प्राचीन है। भारतीयों का संयुक्त रूप से मिलजुलकर रहना पाश्चात्य जगत् के लिए सदैव एक अबूझ पहेली–सा रहा है। पाश्चात्य जगत भारतीय संयुक्त परिवार प्रथा को बड़े कौतूहल के साथ देखता है। संयुक्त रूप से रहना भारतीयों की अपनी विशिष्टता एवं आवश्यकता दोनों है। विशिष्टता इसलिए कि मिल–जुलकर रहने से और काम करने से अनेक समस्याओं का समाधान स्वतः हो जाता है। राग–द्वेष, घृणा इत्यादि से दूरी भी स्वतः हो जाती है। संयुक्त परिवार प्रथा भारतीय समाज की आवश्यकता भी रही है। यह सर्वविदित है कि भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ की अधिकांश जनसंख्या गावों में रहती है, और कृषि पर आश्रित है। कृषिकार्य हेतु मिल–जुलकर रहना नितान्त आवश्यक है। अतएव भारतीय समाज में संयुक्त परिवार प्रथा का प्रचलन आदिकाल से ही चला आ रहा है। भारतीय संस्कृति के मूलभूत सिद्धान्त – वसुधैव कुटुम्बकम, परोपकार एवं सभी प्राणियों के प्रति दया इत्यादि भी भावनाएं भी संयुक्त परिवार प्रथा की पोषक रही हैं। संयुक्त परिवार की सबसे बड़ी विशेषता है कि इसमें कई पीढियां प्रेमपूर्वक रहती हैं और अपनी आवश्यकताओं को पूरा करते हुए विकास की दिशा में अग्रसर होती हैं। जिसमें माता–पिता, भाई–बहन, पति–पत्नी, पुत्र–पुत्री, दादा–दादी, चाचा–चाची, ताया–ताई तथा इनकी संततियां प्रसन्नतापूर्वक एकसाथ निवास करती हैं।

एकल परिवार – भारतीयों की मूल पहचान संयुक्त परिवार ही है। किन्तु कालान्तर में शहरीकरण, औद्योगीकरण, वैयक्तिक विकास एवं अति लालसा के कारण इसका विखण्डन शुरू हुआ। फलतः एकल परिवार प्रथा का प्रचलन प्रकाश में आया। एकल परिवार में पति–पत्नी अपनी संतति के साथ निवास करते हैं। अन्य रिश्ते–नाते इनके लिए बहुत मायने नहीं रखता है। वैयक्तिक स्वार्थ एवं धनलोलुपता बस इस एकल परिवारप्रथा का प्रचलन बढ़ रहा है। एकल परिवार में पति–पत्नी, उनकी सन्तति के अलावा यदा–कदा माता–पिता भी साथ रहते हुए पाए जाते हैं। तथापि इसका स्वरूप संयुक्त परिवार की अपेक्षा अत्यप्ल एवं संकीर्ण होता है। परिवार छोटा होने के कारण निःसन्देह आवश्यकताओं की पूर्ति करना आसान होता है, किन्तु कालान्तर में इसके अनेक दुष्परिणाम भी परिलक्षित होते हैं। इस परिवार की सबसे बड़ी समस्या यह है कि इनके सुख–दुःख में साथी बहुत ही कम होते हैं और आगे चलकर बच्चे जैसे ही थोड़े बड़े हो और अपने पैरों खड़े हो जाते हैं, वे भी अपने माता–पिता, भाई–बहनों से दूर अपना घर बसा लेते हैं। इसमें लेशमात्र सन्देह नहीं है कि एकल परिवार प्रथा भारतीय समाज के साथ–साथ भारतीय संस्कृति के विखण्डन का भी कारण हैं, फलतः हेय है।

नाते–रिश्तेदार – घर परिवार से दूर रहने वाले रक्तसम्बन्धी अथवा परिवारसम्बन्धी जन नाते–रिश्तेदार में परिगणित होते हैं। नाते–रिश्तेदार भी परिवार के दूरस्थ शुभचिन्तक एवं हितैषीजन होते हैं। इसके अन्तर्गत नाना–नानी, मामा–मामी, बुआ–फूफा, जीजा–साला इत्यादि एवं तत्सगे–सम्बन्धियों का परिगण किया जाता है। वैवाहिक–सम्बन्ध नाते–रिश्तेदारी का आधार होता है।

1.3.2 विवाह–प्रथा

'वि' उपसर्गपूर्वक 'वह्' धातु से 'घञ्' प्रत्यय करने पर विवाह पद बनता है, जिसका अर्थ है – वहन करना। शादी, व्याह भी इसके पर्याय हैं। वर द्वारा विशिष्ट प्रयोजन से कन्या को वहन करना अर्थात् ले जाना विवाह है। यह विशिष्ट प्रयोजन है विभिन्न प्रकार के सामाजिक, धार्मिक विधि–विधानों को सुसम्पन्न करना। विवाहप्रथा भारतीय समाज की अतिमहत्त्वपूर्ण प्रथा है। समाज को नियमित करने में विवाह भी अतिमहत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है, इसीलिए सामाजिक संस्थानों में इसका भी परिगणन किया जाता है। सनातन परम्परा में आठ प्रकार के विवाह माने जाते हैं। मनु के अनुसार ब्रह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस तथा पैशाच ये विवाह के आठ प्रकार हैं –

ब्राह्मो दैवस्थतैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः।
गान्धर्वो राक्षश्चौव पैशाचष्टाष्टमोऽधमः।।

ब्राह्म विवाह – ब्राह्म विवाह सर्वश्रेष्ठ विवाह के रूप में परिगणित होता है। इसमें कन्या का पिता योग्य एवं चरित्रवान् वर को घर बुलाकर अपनी कन्या को अच्छे वस्त्रों, आभूषणों से सुसज्जित करके दान देता है। माता–पिता की स्वीकृति से होने वाला यह विवाह विधिवत् संस्कारपूर्वक सुसम्पन्न होता है। तथा वर–वधू माता–पिता के आशीर्वाद प्राप्त कर साथ–साथ रहने की शपथ लेते हैं।

दैव विवाह – वैदिक यज्ञ को सुसम्पन्न कराने वाले पुरोहित को अपनी कन्या प्रदान करना, दैवविवाह है। इस विवाह के अन्तर्गत पिता दैवकार्य सुसम्पन्न कराने वाले ऋत्विक् के साथ अपनी कन्या का विवाह करता है, अतः यह दैवविवाह कहलाता है। यह विवाह ब्राह्म की अपेक्षा कम श्रेष्ठ होता है।

आर्ष विवाह – विवाह का तृतीय भेद है – आर्ष विवाह। इसके अन्तर्गत वर जिस कन्या से विवाह करना चाहता है, उसके पिता को विवाह की अनुमति प्रदान करने के लिए एक जोड़ी बैल या गाय देता है। तत्पश्चात् विवाह करता है। यह विवाह का अप्रशस्त भेद माना जाता है।

प्राजापत्य विवाह – जब कन्या का पिता योग्य वर को "तुम दोनों आजीवन साथ रहकर प्रजापति के प्रति अपने उत्तरदायित्वों को पूरा करो" यह कहकर अपनी कन्या को दान करता है, तो यह प्राजापत्य विवाह कहलाता है। प्रजापति के प्रति उत्तरदायित्वों का निर्वहण किए जाने का निर्देश होने से ही इसका नाम प्राजापत्य विवाह पड़ा है।

आसुर विवाह – पिता को धन देकर उसकी कन्या से विवाह करना आसुर विवाह कहलाता है। यह विवह का निन्दित रूप स्वीकार किया जाता है, क्योंकि इसमें कन्या का पिता वरपक्ष से धन के बदले अपनी कन्या प्रदान करता है।

गान्धर्व विवाह – पुरुष एवं स्त्री एक–दूसरे के गुणों पर अनुरक्त होकर बिना माता–पिता की अनुमति से विवाह कर लेते हैं, ऐसा विवाह गान्धर्व विवाह माना जाता है। गान्धर्व विवाह में वर एवं बधु की ही सहमति होती है। यह विवाह का छठा भेद है। यह विवाह माता–पिता की इच्छा व अनुमति के विरुद्ध होने से प्रशस्त नहीं माना जाता है।

राक्षस विवाह – वर द्वारा बलपूर्वक कन्या का अपहरण कर उससे विवाह करना राक्षस विवाह है। इस विवाह में प्रायः युद्ध के द्वारा कन्या के सगे–सम्बन्धियों को घायलकर अथवा मारकर उसका अपहरण किया जाता है। कन्या के माता–पिता की अनुमति न होने से यह विवाह भी गर्हित ही माना गया है।

पैशाच विवाह – विवाह का आठवां भेद है – पैशाच विवाह। यह विवाह सभी विवाहों में निकृष्टतम माना जाता है। जब कोई पुरुष सोती हुई अथवा मदिरापान की हुई उन्मत्त लड़की से बलपूर्वक सम्बन्ध स्थापित करने के बाद उससे विवाह करता है, तो यह विवाह ही पैशाच विवाह माना जाता है।

सामजिक दृष्टिकोण से उपरोक्त विवाहों में से प्रारम्भिक चार को प्रशंसित एवं अन्तिम चार को निन्दित माना जाता है। विवाह के ये भेद सनातन परम्परा के अनुसार हैं। इनके अतिरिक्त भारतीय समाज में विशेषता आधारित विवाह के अन्य स्वरूप या प्रथाएं भी परिलक्षित होती हैं। जिनका विवेचन अधोलिखित है –

एकविवाह एवं बहुविवाह – नाम से ही स्पष्ट है कि एक विवाह प्रथा में एक ही साथी के चयन की अनुमति होती है, जबकि बहुविवाह प्रथा में एक से अधिक साथी के साथ जीवनयापन की अनुमति होती है।

सवर्ण एवं असवर्ण विवाह – भारतीय समाज चार वर्णों में विभक्त है – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र। समान वर्ण में विवाह करना सवर्ण विवाह है, जबकि अपने से भिन्न वर्ण में विवाह करना ही असवर्ण विवाह है। असवर्ण विवाह के अनुलोम, प्रतिलोम, सगोत्र, सपिण्ड, सप्रवर इत्यादि अनेक भेद–प्रभेद भी होते हैं।

सजातीय एवं बहिर्जातीय विवाह – भारत में अनेक जातियां निवास करती हैं। जब वर एवं कन्या की जाति समान होती है, तब यही सजातीय विवाह कहलाता है, जबकि असमान जाति वाले वर एवं कन्या का विवाह बहिर्जातीय विवाह की श्रेणी में समाहित किए जाते हैं।

1.3.3 धार्मिक विधि–विधान

धारयति इति धर्मः अर्थात् जो धारण करता है, वही धर्म है। यह मनुष्य को गलत करने से रोकता है और सदाचरण के लिए प्रेरित करता है। नैतिक नियमन का आधार धर्म ही है, अतः इसका परिगण भी समाजिक संस्थान में किया जाता है। भारतीय समाज अनेक धर्मों का सम्मिश्रण हैं। हिन्दु, मुस्लिम, सिख, इसाई, बौद्ध, जैन इत्यादि धर्मों को मानने वाले यहाँ आपसी भाई–चारे के साथ निवास करते हैं। यही नहीं इन धर्मों के भी कई भेद–प्रभेद दिखलाई पड़ते हैं। यथा हिन्दु धर्म सनातन, वैष्णव, शैव, आर्यसमाज इत्यादि मतों वाला है। इसी प्रकार मुस्लिम धर्म के शिया एवं सुन्नी भेद, सिख धर्म नामधारी एवं निरंकारी मत, बौद्ध धर्म के हीनयान एवं महायान सम्प्रदाय, जैन धर्म के श्वेताम्बर एवं दिगम्बर सम्प्रदाय इत्यादि प्रभेद हैं। भारतीय समाज की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि अनेक धर्मों एवं धार्मिक मान्यताओं के बाद भी सभी धर्ममतावलम्बी

आपस में मिल–जुलकर रहते हैं। एकदूसरे का साथ देते हैं। यही कारण है कि हमारा भारत देश एक धर्मनिरपेक्ष देश है। धार्मिक विधि–विधान भिन्न–भिन्न होने पर भी राष्ट्रीयता की भावना सबमें परिलक्षित होती है, जो सभी को एक सूत्र में जोड़े रखती है।

1.3.4 वर्णाश्रम व्यवस्था

वर्णव्यवस्था एवं आश्रम व्यवस्था प्राचीन भारतीय समाज की संकल्पनाएं हैं। सामाजिक नियन्त्रण एवं सन्तुलन के लिए वर्णव्यवस्था एवं आश्रम व्यवस्था भी महत्त्वपूर्ण कारक के रूप में काम करते हैं। अतः इनका भी परिगणन भारतीय सामाजिक संस्थानों में किया जाता है। वर्णव्यवस्था एक गुण आधारित व्यवस्था थी, जिसमें गुणों के आधार पर कर्म का निर्धारण करते हुए समाज को चार भागों में बिभक्त किया गया है– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र। गुणाधारित इस व्यवस्था के अनुसार ब्राह्मण का कार्य अध्ययन–अध्यापन करना, यज्ञ–हवन तथा पूजा–पाठ करना होता था। क्षत्रिय शासक वर्ग होता था, जो देश की रक्षा करता था और शासन करता था। वैश्य का मुख्य कार्य व्यापार करना था जबकि शूद्र सेवक वर्ग में परिगणित थे। इसी तरह मनुष्य का जीवन चार आश्रमों में विभक्त था – ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास। ये चार आश्रम वस्तुतः मनुष्य जीवन के चार पड़ाव थे। जिनमें रहकर वह विशेष निर्दिष्ट कर्मों को करता था। ऐसी मान्यता रही है कि मनुष्य को सौ वर्ष तक जीने की कामना करनी चाहिए – **जीवेम शरदः शतम्।** ये सौ वर्ष का जीवनकाल चार पड़ावों में विभक्त है। ब्रह्मचर्य आश्रम में विद्योपार्जन किया जाता था, गृहस्थ आश्रम में आकर विवाहोपरान्त अपनी सन्तति परम्परा को अक्षुण्ण रखते हुए ऋणत्रय से मुक्ति एवं गृहस्थजनोचित कार्यों का सम्पादन करना होता था। वानप्रस्थ आश्रम के अन्तर्गत वन में निवास करते हुए धार्मिक क्रिया–कलापों को सुसम्पन्न किया जाता था, जबकि संन्यास आश्रम में सभी प्रकार की इच्छाओं का संवरण कर भगवद्भक्ति करते हुए वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना से जीविकोपार्जन करना होता था। वर्णाश्रम व्यवस्था की अवधारणा भारतीय समाज की उत्कृष्ट व्यवस्थाओं में से एक है।

1.3.5 जातिव्यवस्था

जातिव्यवस्था का परिगणन भी सामाजिक संस्थान में किया जाता है। चार वर्णों के अलावा भारतीय समाज की संरचना में अनेक जातियां सन्निहित हैं। जाति व्यवस्था जन्म पर आधारित है। जो जिस जाति में जन्म लेता है, वह उसी जाति या समुदाय में परिगणित हो जाता है। भारत में कुल छः हजार से भी अधिक जातियां निवास करती हैं। सभी जातियों की सभ्यता, रहन–सहन, खान–पान भिन्न है। उनका वैवाहिक विधान भी भिन्न है। तथापि जातियों का संविलयन एवं आपसी सहसम्बन्ध भारतीय सामाजिक व्यवस्था की एक प्रमुख विशेषता रही है।

1.3.6 शिक्षा–व्यवस्था

शिक्षा का महत्त्व प्राचीन काल से अद्यावधिपर्यन्त समान रूप से दिखलाई पड़ता है। शिक्षा ही वह माध्यम है, जिसके द्वारा मनुष्य के दुर्गुणों का परिष्कार संभव है। शिक्षा के द्वारा ही समाज को एक दिशा मिलती है। जो समाज जितना अधिक शिक्षित होगा, वह उतना ही उन्नत माना जाता है। अतः शिक्षाव्यवस्था को सामाजिक संस्थानों में अति उत्कृष्ट माना जाता है। शिक्षा का महत्त्व प्राचीन काल से चला आ रहा है। प्राचीन काल में गुरुकुलों में शिक्षा के लिए दूर–दूर से ब्रह्मचारी आते थे, जो समान

रूप से हर प्रकार के भेद–भाव से परे रहकर प्रेमपूर्वक अध्ययन करते थे। प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली गुरुकुल पद्धति में होती थी। गुरुकुलों में गुरु के समीप रहते हुए ब्रह्मचर्य व्रत के नियमों का पालन करते हुए घर से दूर रहकर ब्रह्मचारी विद्याध्ययन करता था। प्राचीन काल में गुरु के नाम से अनेक गुरुकुलों का नामोल्लेख प्राप्त होता है, यथा महर्षि वशिष्ठ आश्रम, महर्षि भारद्वाज आश्रम इत्यादि। इन गुरुकुलों में शास्त्र के साथ–साथ शस्त्र की भी शिक्षा दी जाती थी। जबकि आज परम्परागत गुरुकुल प्रणाली के साथ–साथ आधुनिक पद्धति से पठन–पाठन का कार्य होता है। संस्कृत अध्ययन के अनेक शिक्षाकेन्द्र विद्यमान हैं, जहाँ परम्परागत ढंग से गुरुकुल प्रणाली से ही अध्ययन–अध्यापन किया जाता है। इसमें यह परिवर्तन अवश्य आया है कि अब शास्त्र का ही अध्यापन होता है। शस्त्रविद्या का नहीं। साथ ही वर्तमान समय में आधुनिक पद्धति से भी अध्ययन–अध्यापन बहुतायत से प्रचलित है। विद्यालय. महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालयों के रूप में अनेक शिक्षण संस्थान चल रहे हैं, जहाँ मानविकी, सामाजिक विज्ञान एवं विज्ञान विषयों का पठन–पाठन होता है।

1.3.7 राजनीतिक रचना

राजनीतिक रचना भारतीय समाज के व्यवस्थापन का एक महत्त्वपूर्ण आधार स्तम्भ है। अतएव इनका भी परिगणन भारतीय सामाजिक संस्थानों में किया जाता है। समाज में शक्ति के बंटवारे का आधार राजनीति रचना से सुनिश्चित होता है। वस्तुतः शक्ति और सत्ता का निर्धारण राजनीतिक संस्थाओं के द्वारा ही होता है। प्राचीन काल में राजा एवं सप्तांग राज्य के द्वारा राजनीतिक व्यवस्थाओं का निर्धारण होता था। चाणक्य के अनुसार किसी भी राज्य के राजनीतिक सन्तुलन हेतु उसके सात अंग महत्त्वपूर्ण होते हैं – स्वामी (राजा), अमात्य (मन्त्री), जनपद, दुर्ग, कोष, दण्ड तथा मित्र। वर्तमान समय में भी भारतीय राजनीतिक रचना का स्वरूप का समावेश इसी प्रकार है। जिसमें राजा के स्थान पर मुख्यमन्त्री–प्रधानमन्त्री पद विनिर्मित हैं, तथा मन्त्रिपरिषद् अमात्य श्रेणी में परिगणित होता है। जनपद इत्यादि भी राज्यादि नामान्तर के साथ मिलते हैं। वर्तमान कालीन राज्य में राजा का निर्धारण लोकतान्त्रिक प्रक्रिया से होता है, और जनता जिसको चाहे उसे अपना शासक बना सकती है। पहले राजपरिवार से ही राजा का चयन किया जाता था, जबकि अब कोई भी नागरिक जनता की इच्छा होने पर राजा बनने की योग्यता रखता है। यह प्राचीन एवं वर्तमान कालीन राजनीतिक रचना में सबसे प्रमुख अन्तर है।

1.3.8 आर्थिक संरचना

किसी भी समाज अथवा राष्ट्र की समृद्धि वहाँ की आर्थिक संरचना पर निर्भर करती है। कोई भी समाज आर्थिक दृष्टि से जितना आत्मनिर्भर एवं सुदृढ़ होगा, वह उतना ही सशक्त माना जाता है। यही कारण है कि आर्थिक संरचना को भी सामाजिक संस्थाओं में शामिल किया जाता है। चाणक्य जैसे शास्त्रकारों ने अर्थ को कोष के रूप में रखकर इसे सप्ताङ्ग राज्य में समाहित किया है। अभिप्राय यह है कि अर्थ राज्य का एक अति महत्त्वपूर्ण अंग होता है। आर्थिक रूप से अक्षम समाज न तो अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है, और न ही अपनी रक्षा कर सकता है। भारतीय समाज में आर्थिक असमानता दिखलाई पड़ती है। यहाँ कोई व्यक्ति अति अमीर है, तो कोई अत्यन्त गरीब। आर्थिक विषमता से युक्त व्यक्तियों से निर्मित समाज भी विषम होता है। समाज की आर्थिक विषमता को दूर करने के उद्देश्य से ही समय–समय पर सरकार द्वारा विभिन्न नियमों एवं योजनाओं का क्रियान्वयन किया जाता है।

1.3.9 विविधता में एकता

विविधता में सामंजस्य सामाजिक अभ्युन्नति का एक अति महत्त्वपूर्ण कारक है। अतः इसका परिगणन भी सामाजिक संस्थान में किया जाता है। भारतीय समाज विभिन्न विविधताओं से युक्त है। विभिन्नताओं में सामंजस्य बिठाना किसी भी समाज के लिए अति महत्त्वपूर्ण होता है। विविधताओं में सामंजस्य अथवा विविधता में एकता भारतीय समाज की सबसे बड़ी विशेषता है। भारतीय समाज विविध वर्णों, विविध धर्मों, विभिन्न जातियों, उपजातियों, अनेक भाषाओं, विविध सभ्यता एवं संस्कृति से युक्त है। यहाँ की भौगोलिक संरचना भी भिन्न–भिन्न है। भाषा, धर्म, जाति, वर्ण, संस्कृति, भौगोलिक स्थिति इत्यादि में विभिन्नता होने पर भी उसमें एकता की भावना भारतीय समाज में पदे–पदे परिलक्षित होता है। भारतीय समाज में अनेक धर्म, जाति, सम्प्रदाय, पन्थ के लोग मिल–जुलकर राष्ट्र की उन्नति में अवदान करते हैं।

1.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई में समाज एवं सामाजिक संस्थान के अर्थ को स्पष्ट करते हुए भारतीय सामाजिक संस्थान के विषयक्षेत्र पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। व्यक्तियों का समूह समाज है, और समाज को नियमित एवं व्यवस्थित स्वरूप प्रदान करने वाले संस्थान सामाजिक संस्थान कहलाते हैं। भारतीय समाज को व्यवस्थित करने वाले संस्थानों में घर–परिवार, विवाह–नियम, धार्मिक स्वरूप, वर्ण व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था, जातिव्यवस्था, शिक्षा–व्यवस्था, राजनीतिक रचना, आर्थिक संरचना, विविधता में सामंजस्य की भावना इत्यादि का परिगणन किया जाता है। घर–परिवार सामाजिक संस्थान की सबसे छोटी इकाई है। क्योंकि समाज का प्रारम्भ परिवार से ही होता है। तत्पश्चात विभिन्न व्यवस्थाएं यथा विवाह, धर्म, जाति, वर्ण, आश्रम, शिक्षा इत्यादि उसको व्यवस्थित करने में महती भूमिका निभाते हैं। विविधता में एकता अथवा सामंजस्य की भावना भारतीय समाज की अद्वितीय एवं अनुपम विशेषता है। अतएव सामाजिक संस्थानों में इन सबका परिगणन कर सविस्तर विवेचन किया गया है।

1.5 शब्दावली

अवधारणा – निश्चय अथवा निर्धारण। अमूर्त अथवा मानसिक विचार को अवधारणा पद से अभिहित किया जाता है।

संरचना – बनावट अथवा रचना संरचना पद से अभिप्रेत है।

व्यवस्था – योजनागत पद्धति व्यवस्था कहलाती है।

जाति – जन्म आधारित वंशपरम्परा।

विविधता – विभिन्नता अथवा भेद को विविधता कहा जाता है।

1.6 अभ्यास/बोध प्रश्न

1. भारतीय सामाजिक संरचना अत्यन्त जटिल है। (सत्य/असत्य)
2. अनेकता में एकता भारतीय समाज की विशिष्टता है। (सत्य/असत्य)
3. भारतीय समाजिक अवधारणा संकीर्ण है। (सत्य/असत्य)
4. विवाह के सात प्रकार हैं। (सत्य/असत्य)

5. भारतीय समाज चार वर्णों में विभक्त है। (सत्य/असत्य)
6. राज्य के सात अंग होते हैं। (सत्य/असत्य)
7. आश्रमों की संख्या चार है। (सत्य/असत्य)
8. भारत में एक भाषा का प्रचलन है। (सत्य/असत्य)
9. जातियों की संख्या असंख्य है। (सत्य/असत्य)
10. भारत एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है। (सत्य/असत्य)

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य
2. सत्य
3. असत्य
4. असत्य (सही उत्तर है – विवाह के आठ प्रकार होते हैं।)
5. सत्य
6. सत्य
7. सत्य
8. असत्य (सही उत्तर है – भारत में अनेक भाषाओं का प्रचलन है।)
9. सत्य
10. सत्य।

1.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

भारतीय समाज एवं संस्कृति, रवीन्द्रनाथ मुखर्जी, विवेक प्रकाशन, नई दिल्ली, 1989

सामाजिक संस्था एवं राजशास्त्र, डॉ. इन्दु सोनी एवं डॉ. ऋतु मिश्रा, शिवालिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019

कौटिलीय अर्थशास्त्र, अनुवादक एवं व्याख्याकार प्रो. उदयवीर शास्त्री, मेहरचन्द लक्ष्मणदास प्रकाशन, दिल्ली, 2004।

इकाई 2 भारतीय समाज पर प्रभाव (बौद्ध धर्म, इस्लाम धर्म एवं पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव)

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 भारतीय समाज पर प्रभाव

2.2.1 बौद्ध धर्म का प्रभाव

2.2.2 इस्लाम धर्म का प्रभाव

2.2.3 पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव

2.3 सारांश

2.4 शब्दावली

2.5 अभ्यास/बोध प्रश्न

2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का प्रमुख प्रयोजन भारतीय समाज पर पड़ने वाले विभिन्न धार्मिक एवं सांस्कृतिक प्रभावों का निरूपण करना है। इसके अध्ययन से विद्यार्थी बौद्धधर्म, इस्लाम धर्म के सामान्य स्वरूप से परिचित होंगे साथ ही भारतीय समाज पर इन धर्मों एवं पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव किस रूप में है, इसका भी परिज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

भारतीय समाज विभिन्न धर्मों एवं संस्कृतियों को समेटे हुए है। इसकी एक प्रमुख विशेषता यह है कि यह अत्यन्त उदारता से परिपूर्ण है। यह विभिन्न धर्मों एवं संस्कृतियों को आसानी से अपने अन्दर समाहित कर लेता है। प्रस्तुत इकाई में बौद्ध धर्म, इस्लाम धर्म तथा पाश्चात्य संस्कृति का उपस्थापन करते हुए भारतीय समाज पर पड़ने वाले इनके विविध प्रभावों का अनुशीलन किया गया है।

2.2 भारतीय समाज पर प्रभाव

प्राचीन भारतीय समाज सनातन परम्परा प्रधान समाज रहा है। यह वैदिक मान्यताओं पर आधारित था, तथा वेदों में विहित समस्त सिद्धान्तों से ओत–प्रोत था। वैदिक संस्कृति की प्रधानता के कारण भारतीय समाज जीवों पर दया करना तथा सभी के प्रति सहिष्णु एवं सबको समाहित करने वाला रहा है। यही कारण है कि कालान्तर में भारतीय समाज पर विभिन्न धर्मों एवं विविध संस्कृतियों का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है। सम्प्रति भारतीय समाज पर बौद्ध धर्म, इस्लाम धर्म एवं पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव का विवेचन किया जा रहा है –

2.2.1 बौद्ध धर्म का प्रभाव

बौद्धधर्म– महात्मा बुद्ध ने छठी शताब्दी ईसा पूर्व में बौद्ध धर्म का प्रणयन किया था। महात्मा बुद्ध का जन्म राजकुल में 563 ईसापूर्व कपिलवस्तु के निकट लुम्बिनी वन में हुआ था। वर्तमान में यह स्थान नेपाल देश के अन्तर्गत आता है। इनके पिता का नाम राजा शुद्धोधन एवं माता का नाम मायादेवी थ। बुद्ध के बचपन का नाम सिद्वार्थ था। इनकी पत्नी का नाम यशोधरा था। दुःखीजनों को देखकर इनका मन द्रवित हो जाता है, और राजपाट का परित्याग कर बोध गया में कठोर से तपस्या से इन्होंने ज्ञान प्राप्त किया। ज्ञानप्राप्ति के पश्चात् इन्होंने सारनाथ में प्रथम उपदेश दिया। भारत के कुशीनगर में 483 ईसा पूर्व में इनहोंने नश्वर शरीर का परित्याग किया। बौद्ध धर्म हीनयान एवं महायान दो धार्मिक सम्प्रदायों में विभक्त है –हीनयान और महायान। बौद्ध धर्म के प्रमुख धार्मिक सिद्धान्तों में चार आर्यसत्य, अष्टांगिक मार्ग एवं पंचशील की अवधारणा है। चार आर्यसत्यों में दुःख, दुःख का कारण, दुःख निरोध, दुःख निरोध का मार्ग का परिगणन होता है। अष्टांगिक मार्ग दुःखों से मुक्ति के साधन हैं। इसके अन्तर्गत् सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाक, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति एवं सम्यक् समाधि को उल्लेख किया जाता है। पंचशील में अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, सत्य और मद्यनिषेध को समाहित किया जाता है।

बौद्धधर्म के प्रमुख धार्मिक सिद्धान्त–बौद्ध धर्म के प्रमुख धार्मिक सिद्धान्तों में चार आर्यसत्य, अष्टांगिक मार्ग एवं पंचशील की के सिद्धान्त समाहित हैं, जिनका संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है–

चार आर्य सत्य– आर्य सत्य की संकल्पना बौद्ध दर्शन के मूल सिद्धांत है। चार आर्यसत्य इसप्रकार हैं–

1) दुःख – दुःख प्रथम आर्य सत्य है। इसके अनुसार संसार में सर्वत्र दुःख है।
2) दुःख–समुदाय – यह बौद्ध धर्म का द्वितीय आर्यसत्य है। दुःख है, तो इद्सका कारण भी है।
3) दुःख–निरोध – दुःख का निवारण भी संभव है। अभिप्राय यह है कि बौद्ध धर्म संसार को दुःखमय तो मानता है, साथ ही वह इन दुःखो के कारणों को बताकर उसका निवारण संभव है, यह भी बताता है।
4) दुःख निरोध मार्ग – दुःख का निवारण का मार्ग भी है और वह है – अष्टांगिक मार्ग।

आष्टांगिक मार्ग – बौद्ध धर्म में चतुर्थ आर्यसत्य के अन्तर्गत 'दुःख का निवारण' के मार्ग पर प्रकाश डाला गया है और वह मार्ग है – अष्टांगिक मार्ग। जिसके अन्तर्गत सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्म, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि का परिगणन किया जाता है। अष्टांगिक मार्ग का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है–

सम्यक् दृष्टि – बौद्ध धर्म में प्रतिपादित चार आर्यसत्यों में विश्वास करना ही सम्यक् सम्यक् दृष्टि है।

सम्यक् संकल्प – मानसिक और नैतिक विकास की प्रतिज्ञा करना सम्यक् संकल्प कहलाता है।

सम्यक् वाक्– सम्यक् वाणी अथवा सदैव सत्य बोलना और झूठ का परित्याग ही सम्यक् वाक् है।

सम्यक् कर्म – सदाचरण युक्त कर्म करना और हानिकारक कर्म न करना सम्यक् कर्म कहलाता है।

सम्यक् आजीविका – जीविका का साधन नैतिक होना और किसी भी स्थिति में अनुचित मार्ग से जीविकोपार्जन न करना सम्यक् आजीविका है।

सम्यक् व्यायाम – सम्यक् दृष्टि इत्यादि पांच मार्गों का सदैव अनुपालन करना ही सम्यक् व्यायाम है।

सम्यक् स्मृति – अत्यन्त परिश्रम से प्राप्त ज्ञान को सर्वदा स्मरण रखना सम्यक् स्मृति है।

सम्यक् समाधि – चित्तवित्तियों का निरोध सम्यक् समाधि कहलाता है।

बौद्ध धर्म का भारतीय समाज पर प्रभाव– बौद्ध धर्म का आविर्भाव वैदिक धर्म से ही हुआ है। वैदिक धर्म के कुछ सिद्धान्तों से महात्मा बुद्ध असहमत थे। अतः उनकी धार्मिक मान्यताओं का खण्डन किया है। जिसमें कर्मकांड प्रमुख है। वैदिक कर्मकाण्ड एवं सनातन परम्परा में वर्णित वर्णव्यवस्था से महात्मा बुद्ध का विरोध था। यही कारण है कि राजकुल में उत्पन्न होने पर भी उन्होंने संसारिक वैभव एवं भोगविलास का परित्याग कर सामान्य जन के बीच अपना जीवन–यापन किया और उन्हें दुःखों से मुक्त कराने का प्रयास किया। महात्मा बुद्ध वैदिक मान्यताओं ईश्वर, आत्मा इत्यादि में विश्वास नहीं करते थे। फलतः इन्होंने अनीश्ववाद एवं अनात्मवाद का प्रणयन किया। यज्ञीय कर्मकाण्ड के वे पक्षधर नहीं थे, क्योंकि वे अहिंसा में पूर्णतः विश्वास करते थे। महात्मा बुद्ध का व्यक्तित्व एवं उनके सिद्धान्तों का भारतीय जनमानस एवं भारतीय समाज पर गहरा प्रभाव पड़ा। उनके सिद्धान्तों एवं विचारों से सहमत होकर असंख्य भारतीयों ने बौद्धधर्म को अंगीकार कर लिया। उनका प्रभाव न केवल भारतीयों पर पड़ा, बल्कि उनका मत भारत के बाहर भी व्यापक रूप से समादृत हुआ। यही कारण है कि भारत के बाहर कई देशों यथा– चीन, तिब्बत, कोरिया, श्रीलंका, जापान आदि में इनके अनुयायियों की बड़ी तादात दिखलाई पड़ती है। वैदिक कर्मकाण्ड एवं मान्यताओं में जिन मनुष्यों का अविश्वास था, उन पर तथा तत्सम्बन्धी समाज पर महात्मा बुद्ध का गहन प्रभाव पड़ा। महात्मा बुद्ध प्रदत्त पंचशील में समाहित अहिंसा इत्यादि की अवधारणा सामाजिक दृष्टिकोण से ज्यादा प्रशंसित हुई। संसार को दुःखमय मानना तथा उससे मुक्ति हेतु प्रदर्शित अष्टांगिक मार्ग को भी भारतीय जनमानस से यथोचित रूप से ग्रहण किया। इसप्रकार भारतीय समाज पर बौद्ध धर्म एवं इसके सिद्धान्तों का प्रभूत प्रभाव पड़ा। वर्तमान समय में भारत में बौद्ध धर्म मत अवलम्बियों की संख्या लगभग एक करोड़ के आस–पास है।

2.2.2 इस्लाम धर्म का प्रभाव

इस्लाम धर्म– हजरत मुहम्मद को इस्लाम धर्म का प्रवर्तक एवं प्रतिष्ठापक माना जाता है। इनका जन्म 570 ई. में सउदी अरब के मक्का में हुआ था। इनके पिता का नाम अब्दुला तथा माता का नाम अमीना था। 610 ई. में मक्का के समीपस्थ हीरा नामक गुफा में हजरत मुहम्मद को ज्ञान की प्राप्ति हुई थी। इसलिए इस्लाम धर्म में मक्का का अति पवित्र स्थान है। इनका विवाह २5 साल की उम्र में खदीजा नाम की विधवा के साथ हुआ था। खदीजा ही इनकी प्रथम अनुयायी भी थी। इस्लाम

एकेश्वरवाद को मानता है। इस्लाम धर्म के आधारभूत सिद्धांत के अनुसार अल्लाह सर्वशक्तिमान एवं जगत् का एकमात्र पालक हैं, और हजरत मुहम्मद उनके संदेशवाहक या पैगम्बर हैं। ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् पैगंबर अर्थात् हजरत मुहम्मद ने मक्का से मदीना की यात्रा की थी, अतः मक्का से मदीना की यात्रा करना इस्लाम में अत्यन्त पावन एवं नेक स्वीकार किया जाता है। भारत में सन् 711 ईसवी में इस्लाम का आगमन हुआ था। भारत में इस्लाम धर्म का प्रचार–प्रसार बाह्य मुस्लिम आक्रान्ताओं के द्वारा किया गया था, जिनमें मुहम्मद बिन कासिम, महमूद गजनवी और मोहम्मद गोरी मुख्यरूप से सम्मिलित हैं। इस्लाम के अनुयायियों को मुसलमान और इनका प्रार्थना स्थल मस्जिद कहलाता है। इस्लाम के दो प्रमुख धार्मिक सम्प्रदाय हैं– शिया और सुन्नी।

भारतीय समाज पर इस्लाम धर्म का प्रभाव

भारत में वैदिक धर्म के पश्चात् बौद्ध एवं जैन धर्म का प्रचार–प्रसार हुआ। बौद्ध एवं जैन धर्म का समय छठी शताब्दी ईसापूर्व स्वीकार किया जात है। बौद्ध–जैन के बाद मुगल काल में भारतीय समाज में इस्लाम धर्म का प्रभाव परिलक्षित होता है। प्रारम्भिक अवस्था में भारतीय समाज में भय के कारण कुछ लोगों ने इसको अपना लिया किन्तु कालान्तर में एक–दूसरे से प्रेरित होकर इस्लाम धर्म के भी अनेकानेक अनुयायी बनते चले गए। इस समय भारत में हिन्दु धर्म के बाद इस्लाम धर्म ही स्थान आता है। सन् २०११ की जनगणना के अनुसार भारत में मुस्लिम आबादी लगभग १४.७ करोड़ है, जो भारतीय जनसंख्या का १४.२ प्रतिशत है। इस्लाम धर्म ने भारतीय समाज के मुस्लिम समुदाय के खान–पान, रहन–सहन, वेष–भूषा, सभ्यता–संस्कृति इत्यादि सभी पर अपना प्रभाव छोड़ा है। हिन्दु–मुस्लिम संस्कृतियों में पर्याप्त मत विभन्नता है। तथापि दोनों धर्मों ने एक दूसरे कुछ सामाजिक एवं धार्मिक सिद्धान्तों को ग्रहण किया है। हिन्दु धर्म के अद्वैत मत का प्रभाव मुस्लिम धर्म में एकेश्वरवाद पर परिलक्षित होता है, तो जाति सम्बन्धी कठोरता का सिद्धान्त हिन्दु धर्म ने इस्लाम धर्म से ग्रहण किया है। हिन्दु समाज में कालान्तर में आए खान–पान के नियमों की कठोरता भी इस्लाम धर्म की ही देन है। हिन्दु राजपूत समाज में जौहर प्रथा का प्रारम्भ भी मुस्लिमों के आगमन के पश्चात् ही दृष्टिगोचर हुआ। इस प्रकार इस्लाम धर्म का भारतीय हिन्दु समाज पर व्यापक प्रभाव पड़ा, इसमें सन्देह नहीं है।

2.2.3 पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव

भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति विश्व की अन्य सभ्यता एवं संस्कृतियों पर अपना प्रभाव छोड़ने में सफल रही है। किन्तु अपनी उदारता के कारण अन्य सभ्यताओं एवं संस्कृ तियों से कुछमूलभूत तथ्यों को ग्रहण भी किया है। वर्तमान भारतीय समाज पर पाश्चात्य संस्कृति का व्यापक प्रभाव दिखलाई पड़ता है, जिसका निरूपण अधोलिखित है –

परिवार–प्रथा पर प्रभाव – प्राचीन काल से ही भारतीय समाज में संयुक्त परिवार प्रथा का प्रचलन रहा है। किन्तु आधुनिक युग में पाश्चात्य संस्कृति के अनुकरण के कारण ही यहाँ पर एकल परिवार प्रथा का प्रचलन बढ़ा है।

भाषायी प्रभाव– आज अंग्रेजी भाषा और संस्कृति को ही आधुनिकता का पर्याय समझा जाता है। यही कारण है कि अंग्रेजी भाषा के प्रति भारतीय समाज अत्यधिक जागरुक है। और बड़ी ही तन्मयता के साथ इसे सीखने को उद्यत भी रहता है। भारत के कार्यालय से लेकर न्यायालय तक अंग्रेजी भाषा का ही बोलबाला है। देश में

हिन्दी की उपेक्षा किसी से छिपी हुई नहीं है, यही कारण है कि हिन्दी आधिकारिक भाषा होने पर भी सरकारी क्रिया–कलाप की भाषा नहीं बन पाई है।

खान–पान– भारत एक कृषि प्रधान राष्ट्र है। अतः यहाँ की अधिकांश जनसंख्या शाकाहारी है। किन्तु पाश्चात्य सभ्यता के अनुकरण के फलस्वरूप ही आज हमारा समाज मांसाहार की ओर अग्रसर है। मदिरा रूपी व्यसन का चलन भी अब अधिक प्रचलन में है।

वेष–भूषा– पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव भारतीय समाज की वेष–भूषा पर भी पड़ा है। पुरुष अपने पारम्परिक परिधान धोती–कुर्ता–पायजामा का परित्याग कर सूट–बूट को धारण करना श्रेयस्कर समझता है, जबकि स्त्रियों ने साड़ियों का प्रयोग बन्द करके जींस इत्यादि को पहनना प्रारम्भ कर दिया है। स्त्रियों में बड़े–बुजुर्गों के सम्मुख सिर ढकने की परम्परा गायब–सी होती जा रही है।

विवाह–प्रथा पर प्रभाव– भारतीय समाज की पहचान इसकी वैवाहिक प्रथा में भी परिवर्तन आया है। प्राचीनकाल में जहाँ माता–पिता की इच्छा से ही अधिकांश विवाह हुआ करते थे, वहीं अब लड़का और लड़की आपसी सहमति से विवाह करना ज्यादा उचित समझते हैं। विवाह हेतु निर्धारित उम्र की सीमा में भी परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहा है। आज का युवा उम्रदराज होने पर ही वैवाहिक बन्धन में बंधना चाहता है। विवाह–विच्छेद जहाँ प्राचीन समाज में था ही नहीं, वहीं अब इसका चलन बहुतायत से हो रहा है। यही नहीं लिविंग रिलेशनशिप भी भारतीय समाज में बढ़ रहा है, जो निःसन्देह पाश्चात्य संस्कृति का अनुकरण का ही दुष्परिणाम है।

कृत्रिम साज–सज्जा– प्राचीनकाल में सौन्दर्य प्रसाधन प्रकृति पर निर्भर था। युवतियाँ पुष्पगुच्छों इत्यादि से ही श्रृंगार कर लिया करती थीं। किन्तु आज सुन्दर दिखने के लिए नाना प्रकार के सौन्दर्य प्रसाधन बाज़ार में सुलभ हैं। जिनके सेवन से सभी अपना नैसर्गिक सौन्दर्य खो रहे हैं।

आचार–विचार एवं व्यवहार पर प्रभाव– पाश्चात्य संस्कृति का भारतीय आचार–विचार एवं व्यवहार पर भी प्रभाव पड़ा है। आज हर व्यक्ति येन–केन प्रकारेण सफल होना चाहता है। उसके लिए लक्ष्य प्राप्ति ही प्रमुख ध्येय है। उसका माध्यम उन्नत हो यह आवश्यक नहीं। उदारता एवं परोपकार की भावना जो भारतीय संस्कृति का मूल रही है, वह आज लुप्त सी होती जा रही है। स्वार्थपरता एवं धनलोलुपता के कारण व्यक्ति का नैतिक ह्रास हो रहा है। सर्वत्र अहम और व्यक्ति सुख की कामना ही परिलक्षित हो रही है। धनसंग्रह की भावना प्रबल हो चुकी है, अतएव समाज में विषमता बढ़ रही है। पारिवारिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है।

संस्कार पर प्रभाव – भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति में उल्लिखित है कि अपने से बड़े लोगों का आदर करो और माता–पिता तथा गुरुजनों की आज्ञा का पालन करो। किन्तु भारतीय जनमानस पर पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव के कारण इसके संस्कार भी क्षीण हो रहे हैं। आज संतान अपने बुजुर्ग माता–पिता को अपने साथ नहीं रखना चाहता। पाश्चात्य कुसंस्कारों समाज में अनाचार, दुराचार, भ्रष्टाचार, अत्याचार, व्यभिचार का प्रभाव बढ़ रहा है। स्पष्ट है कि पाश्चात्य संस्कृति ने भारतीय संस्कृति एवं समाज को जकड़ रखा है। इससे ह्रास और केवल ह्रास हो रहा है। अतएव पाश्चात्य संस्कृति का परित्याग निःसन्देह अतीव आवश्यक है।

2.4 सारांश

भारतीय समाज अत्यन्त उदार समाज है। यह विभिन्न सभ्यता एवं संस्कृतियों को अपने अन्दर समाहित किए हुए है। भारतीय समाज पर धर्मगत एवं संस्कृतिगत अनेकानेक प्रभाव परिलक्षित होते हैं। बौद्ध धर्म जो वस्तुतः वैदिक धर्म से ही निःसृत है, उसका प्रभाव भारतीय समाज पर प्रमुखता से परिलक्षित होता है। बौद्ध धर्म के अनेक विचार भारतीय समाज ने पूर्णतः अंगीकार कर लिया है। बौद्ध धर्म के अलावा इस्लाम धर्म यद्यपि सनातन अथवा वैदिक धर्म से पूर्णतः भिन्न है, तथापि इसके अनेक सिद्धान्त भी वैदिक धर्म में सन्निहित हो गए हैं। पाश्चात्य संस्कृति से भारतीय संस्कृति अत्यधिक प्रभावित हुई है। पाश्चात्यों के कारण ही हमारी संस्कृति का सर्वाधिक ह्रास हुआ है और आज भी हो रहा है। भारतीय संस्कृति पर पाश्चात्य संस्कृति के विभिन्न प्रभावों का विस्तारपूर्वक विवेचन प्रस्तुत इकाई में किया गया है। साथ ही वैदिक धर्म एवं भारतीय समाज पर बौद्ध एवं इस्लाम धर्म के प्रभाव का निरूपण भी यथावसर समुचित रूप में निरूपित है।

2.5 शब्दावली

अनुशीलन – गहन विवेचन अथवा व्यवस्थित निरूपण।

परिज्ञान – भलीभाँति ज्ञान

2.6 अभ्यास/बोध प्रश्न

1. बौद्ध धर्म के दो सम्प्रदाय हैं। (सत्य/असत्य)
2. बौद्ध धर्म के प्रवर्तक महावीर स्वामी हैं। (सत्य/असत्य)
3. बौद्ध धर्म में चार आर्यसत्य माने गए हैं। (सत्य/असत्य)
4. पंचशील में सत्य का परिगणन होता है। (सत्य/असत्य)
5. हजरत मुहम्मद को ही पैगम्बर माना गया है। (सत्य/असत्य)
6. खदीजा हजरत मुहम्मद की पत्नी थीं। (सत्य/असत्य)
7. दुःख निरोध के सात मार्ग हैं। (सत्य/असत्य)
8. पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव भारतीय समाज पर नहीं है। (सत्य/असत्य)
9. महात्मा बुद्ध का जन्म राजपरिवार में हुआ था (सत्य/असत्य)
10. बुद्ध के बचपन का नाम सिद्धार्थ था। (सत्य/असत्य)

2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य
2. असत्य (सही उत्तर है – महात्मा बुद्ध।)
3. सत्य
4. सत्य
5. सत्य

6. सत्य
7. असत्य सही उत्तर है – आठ।)
8. असत्य (सही उत्तर है – पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव भारतीय समाज पर अत्यधिक पड़ा है।)
9. सत्य
10. सत्य।

2.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- भारतीय समाज एवं संस्कृति, रवीन्द्रनाथ मुखर्जी, विवेक प्रकाशन, नई दिल्ली, 1989
- भारतीय दर्शन की रूपरेखा, प्रो. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, २०१२
- संस्कृत–हिन्दी कोश, बामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, १९९७।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 3 सामाजिक परिवर्तन (वैदिक काल से आधुनिक काल)

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 सामाजिक परिवर्तन

- 3.2.1 वेद कालीन कालीन समाज
- 3.2.2 प्रमुख सामाजिक परिवर्तन
- 3.2.3 सामाजिक परिवर्तन के कारण

3.3 सारांश

3.4 शब्दावली

3.5 बोध प्रश्न

3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.7 अभ्यास

3.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों को वैदिक समाज का सामान्य परिज्ञान कराके विविध कारणों से इसमें हुए परिवर्तनों से अवगत कराना है। छात्र इस इकाई को पढ़कर सामाजिक परिवर्तन के कारणों को जान पायेंगे।

3.1 प्रस्तावना

किसी भी समाज के विकास के लिए उसमें परिवर्तन अपेक्षित है। किसी भी समाज का प्रमुख लक्ष्य प्रगति करना है। प्रगति परिवर्तन के बिना सर्वथा असंभव है। यह परिवर्तन विभिन्न कारणों से होता है। काल विशेष से समाज में सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रकार के परिवर्तन परिलक्षित होते हैं। प्रस्तुत इकाई में भारतीय समाज में हुए विभिन्न परिवर्तनों एवं उसके कारणों का विशद् अध्ययन किया जाएगा।

3.2 सामाजिक परिवर्तन

वैदिक काल से लेकर अद्यावधिपर्यन्त सामाजिक परिवर्तनों के विवेचन हेतु वेद कालीन समाज एवं आधुनिक समाज का सामान्य विवेचन करते हुए उनमें हुए अन्तर का अन्वेषण अपेक्षित है, साथ ही इन परिवर्तनों के कारणों पर भी विचार करना आवश्यक है।

3.2.1 वेद कालीन समाज

वेद कालीन समाज एक पितृसत्तात्मक समाज था। वेद कालीन समाज के विविध पक्ष अधोलिखित हैं –

स्त्री–पुरुष का स्थान

वेद कालीन समाज में माता–पिता दोनों का अति महत्त्वपूर्ण स्थान था। पिता मुखिया अवश्य होता था किन्तु माता की दशा भी अच्छी थी। परिवार के भरण–पोषण का उत्तरदायित्व पिता का ही हुआ करता था। माता गृहणी के रूप में अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह किया करती थी। इस प्रकार वैदिक समाज में स्त्री और पुरुष दोनों को बराबर महत्त्व दिया जाता था।

परिवार–प्रथा

वैदिक काल में संयुक्त परिवार का प्रचलन था। परिवार के सभी सदस्य अत्यन्त प्रेम–पूर्वक मिल–जुलकर रहते थे। कई पीढ़ियां साथ–साथ रहती थी तथा अपने उद्देश्यों को प्राप्त करती थीं।

खान–पान

वैदिक समाज कृषि प्रधान समाज था। कृषि और पशुपालन जीविकोपार्जन के महत्त्वपूर्ण साधन थे। अतः वैदिक काल में दूध, दधि और शाकाहार का प्रचलन अधिकांशतः होता था। जंगल में रहने वाले अरण्यकजन ही मांशाहार किया करते थे।

वेष–भूषा

वैदिक काल में पुरुष सिर पर पगड़ी तथा अधोवस्त्र एवं उत्तरीय धारण किया करते थे। स्त्रियां श्रृंगारप्रिया थीं और अपने केशों को सुसज्जित करती थीं। इसके लिए वे प्रायः प्राकृतिक पुष्पों एवं वनस्पतियों का प्रयोग किया करती थीं। स्त्री–पुरुष दोनों ही आभूषण प्रिय होते थे। वे विभिन्न प्रकार के धातुओं से बने आभूषणों के प्रयोग से सुपरिचित थे। कर्णफूल, गले में कण्ठाहार और हाथों में कड़े धारण किया करते थे।

व्यसन

वैदिककालीन समाज का मुख्य व्यसन सुरापान, आखेट एवं द्युतक्रीड़ा थी। वैदिक समाज सुरापान से सुपरिचित था और मनोरंजन के लिए प्रायः आखेट और द्युतक्रीड़ा किया करता था।

विवाह–विधान

वैदिक काल में विवाह कामक्रीड़ा की पूर्ति का माध्यम न होकर धार्मिक उत्तरदायित्वों के निर्वाह का साधन माना जाता था। वैदिक काल माता–पिता की इच्छा से तो विवाह होते ही थे किन्तु प्रेम विवाह के उदाहरण भी हमें मिलते हैं। बाल–विवाह की प्रथा भी उस समय प्रचलित थी।

3.2.2 प्रमुख सामाजिक परिवर्तन

आधुनिक समाज वैदिक कालीन समाज से अनेक अर्थों में भिन्नता रखता है। आधुनिक समाज पाश्चात्य संस्कृति से अनुप्रेरित होने के कारण कतिपय न्यूनताओं से युक्त हो गया है।

एकल परिवार – भारतीयों की मूल पहचान संयुक्त परिवार ही है। वैदिक कालीन संस्कृति में जहाँ संयुक्त परिवार प्रथा का प्रचलन था, वहीं आधुनिक काल में

शहरीकरण, औद्योगीकरण, वैयक्तिक विकास एवं अति लालसा के कारण के कारण एकल परिवार प्रथा की प्रधानता हो गई है।

स्त्री–पुरुष की स्थिति – वैदिक काल में नारी की स्थिति अत्यन्त सुदृढ़ थी। उसके पश्चात् उत्तर वैदिक काल, ब्राह्मण काल, रामायण एवं महाभारत काल तथा महाकाव्य काल में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की स्थिति निरन्तर गिरती चली गई। मुगल काल में इसमें सर्वाधिक ह्रास देखने को मिलता है। आज के समाज में स्त्रियों की स्थिति निःसन्देह मुगल कालादि से बहुत सुदृढ़ हुई है। आज की स्त्री पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चल रही है।तथापि इसमें अभी भी सुधार की आवश्यकता है। पुरुषों की अपेक्षा आज भी स्त्रियां कम सुदृढ़ स्थिति में हैं। आज के समाज में भी स्त्रियों पर अत्याचार यत्र–तत्र परिलक्षित होता रहता है। अतः इनकी स्थिति अभी और भी सुदृढ़ किए जाने की नितान्त आवश्यकता है। स्त्रियां भी पुरुषों की तरह सामाजिक मान–सम्मान की प्राप्त करने की पात्र हैं।

खान–पान– वैदिक काल में भारतीय समाज के अधिकांश जन शाकाहार का सेवन किया करते थे किन्तु आधुनिकता की अन्धी दौड़ में अनुलग्न वर्तमान समाज मांसाहार का भी बहुधा सेवन कर लेता है।

वेष–भूषा– वैदिक समाज परम्परागत परिधानों को धारण करता था, जबकि आज का समाज सूट–बूट जैसे पश्चिमी सभ्यता आधारित वस्त्रों को धारण करता है।

विवाह–प्रथा पर प्रभाव– वैवाहिक स्थिति में आधुनिक समाज वैदिक समाज की अपेक्षा सुदृढ़ हुआ है। वैदिक समाज में बाल–विवाह के उदाहरण दिखलाई पड़ते थे किन्तु वर्तमान समय में बाल–विवाह एक दण्डनीय अपराध माना जाता है।

साज–सज्जा में अन्तर – वैदिक काल में सौन्दर्य प्रसाधन प्रकृति पर निर्भर था। युवतियाँ पुष्पगुच्छों इत्यादि से ही श्रृंगार कर लिया करती थीं किन्तु आज सुन्दर दिखने के लिए नाना प्रकार के सौन्दर्य प्रसाधन बाज़ार में सुलभ हैं जिनके सेवन से सभी अपना नैसर्गिक सौन्दर्य खो रहे हैं।

सदाचरण में अन्तर– वैदिक समाज उच्च आदर्शों एवं उत्कृष्ट मानवीय मूल्यों से युक्त था किन्तु आज के समाज में प्रायः मानवीय मूल्यों, उच्च आदर्शों का अभाव सा हो गया है।

संस्कार में अन्तर– वैदिक सभ्यता अपने से बड़े लोगों का आदर एवं सम्मान की भावना से युक्त है माता–पिता एवं गुरु को भगवान् के समान माना गया है। किन्तु वर्तमान कालिन समाज में उपरोक्त संस्कार का ह्रास हो चुका है। आज संतान अपने बुजुर्ग माता–पिता को अपने साथ नहीं रखना चाहता। पाश्चात्य कुसंस्कारों के कारण समाज में अनाचार, दुराचार, भ्रष्टाचार, अत्याचार, व्यभिचार का प्रभाव बढ़ रहा है। स्पष्ट है कि वैदिक समाज की अपेक्षा वर्तमान समाज संकीर्ण भारतीय संस्कृति एवं समाज को जकड़ रखा है। इससे ह्रास और केवल ह्रास हो रहा है। अत एव पाश्चात्य संस्कृति का परित्याग निःसन्देह अतीव आवश्य है।

3.2.3 सामाजिक परिवर्तन के कारण

सामाजिक परिवर्तन के प्रमुख कारण अधोलिखित हैं–

विकास की अपेक्षा रूप कारण – वैदिक समाज में निरन्तर परिवर्तन होता रहा है। इसका सबसे बड़ा कारण विकास की अपेक्षा है। कोई भी समाज परिवर्तन के बिना विकास कर ही नहीं सकता है। अतः परिवर्तन सामाजिक विकास के लिए नितान्त आवश्यक है। वैदिक समाज के अद्यावधि पर्यन्त परिवर्तन का सर्वप्रमुख कारण विकास की अपेक्षा ही है।

जैविक कारण – सामाजिक परिवर्तन का कारण जैविक भी है। जनसंख्या वृद्धि के कारण भी सामजिक सम्बन्धों पर प्रभाव अवश्य पड़ता है। क्योंकि जनसंख्या घनत्व तथा शारीरिक एवं मानसिक योग्यता का सीधा सम्बन्ध सामाजिक परिवर्तन से होता है।

सांस्कृतिक कारण – संस्कृति में परिवर्तन के कारण भी सामाजिक परिवर्तन हो जाता है। अन्य संस्कृतियों से प्रभावित होते ही सामाजिक परिवर्तन स्वाभाविक रूप से हो जाता है।

औद्योगिकीकरण – सामाजिक परिवर्तन में औद्योगिकीकरण भी महती भूमिका निभाता है। इसके कारण ही समाज में धनलोलुपता एवं भौतिक समृद्धि की कामना पढ़ती जाती है। लालसा के कारण सामाजिक स्थिति में परिवर्तन आना स्वाभाविक है।

पश्चिमीकरण – भारतीय समाज के परिवर्तित होने का एक प्रमुख कारण पश्चिमीकरण भी है। पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित होकर भारतीय समाज ने वैदिक कालीन समाज से आधुनिक भारतीय समाज अनेक वैदिक व्यवस्थाओं से परे हो गया है।

प्रजातन्त्र की स्थापना– वैदिक काल में राजशाही व्यवस्था थी। राजा प्रायः राजकुल से ही मनोनीत होता था। भारत में प्रजातन्त्र की स्थापन के उपरान्त यह व्यवस्था बदल चुकी है। प्रजातन्त्र की व्यवस्था राजतन्त्र से भिन्न होती है। फलतः वह सामाजिक व्यवस्था को प्रभावित करते हुए उसमें अपेक्षित बदलाव कर देती है।

शहरीकरण– वैदिक काल में अधिकांश भारतीय जनसमूह गांवों में निवास करती थी। गांवों की व्यवस्था एवं विधि–विधान अलग था। वर्तमान समय में गांवों के लोग शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं। अतः शहरीकरण का दायरा निरन्तर बढ़ता जा रहा है। शहर की व्यवस्था गांवों से सर्वथा भिन्न है। कुछ ऐसे कार्य जो गांव में रहकर आसानी से हो सकते हैं, वो शहरों में सर्वथा असंभव हैं। यथा–संयुक्त परिवार की व्यवस्था ग्रामीण अंचल में आसानी से चल सकती है, क्योंकि वहाँ उपलब्ध निवास स्थल अपेक्षाकृत अधिक होता है। जबकि यही व्यवस्था शहर में कर पाना अपेक्षाकृत अत्यधिक कठिन हो जाती है।

3.3 सारांश

सामाजिक अभ्युन्नति के लिए सामाजिक परिवर्तन नितान्त आवश्यक है। समाज का अग्रसर होना या विकासशील होना समाज का सर्वप्रमुख लक्ष्य है, जिसकी प्राप्ति परिवर्तन के बिना असंभव है। परिवर्तन ही विकास सबसे बड़ा माध्यम है। अतः समाज के मूल लक्ष्य विकास के निमित्त सामाजिक परिवर्तन होता रहता है। सामाजिक परिवर्तन के अन्य कारण भी हैं, यथा–औद्योगिकीकरण, शहरीकरण, प्रजातन्त्रीकरण इत्यादि। विभिन्न संस्कृतियों के प्रभाव से भी सामाजिक परिवर्तन हो जाता है। प्रस्तुत

इकाई में सामाजिक परिवर्तन के अभिप्राय एवं उसके कारणों का व्यवस्थित एवं सारगर्भित विवेचन किया गया है।

3.4 शब्दावली

परिज्ञान = सूक्ष्मतम ज्ञान

सुसज्जित = अच्छी तरह से सजा हुआ, तैयार

नैसर्गिक = प्राकृतिक अथवा स्वाभाविकि

सारगर्भित = प्रभावशाली।

3.5 बोध प्रश्न

1. सामाजिक परिवर्तन विकास के लिए आवश्यक है। (सत्य/असत्य)
2. औद्योगिकीकरण सामाजिक परिवर्तन का एक कारण है। (सत्य/असत्य)
3. वर्तमान समाज में पारिवारिक मूल्यों का ह्रास हुआ है। (सत्य/असत्य)
4. वैदिक काल की अपेक्षा वर्तमान में नारी की स्थिति में सुधार हुआ है।(सत्य/असत्य)
5. वैदिक समाज में संयुक्त परिवार प्रथा का प्रचलन था। (सत्य/असत्य)

3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य
2. सत्य
3. सत्य
4. असत्य
5. सत्य

3.7 अभ्यास प्रश्न

1. सामाजिक परिवर्तन से आप क्या समझते हैं?
2. वैदिक समाज एवं वर्तमान भारतीय समाज में प्रमुख अन्तर को स्पष्ट करें।
3. सामाजिक परिवर्तन के विविध कारणों पर सविस्तार प्रकाश डालिए।

निर्देश – इन प्रश्नों के उत्तर लिखने का प्रयास विद्यार्थी स्वतः करे।

3.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, डॉ. के.के. मिश्र, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, १९८०
- संस्कृत–हिन्दी कोश, बामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, १९९७
- संस्कृत साहित्य का वृहद् इतिहास, डॉ. पुष्पा गुप्ता, इस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, २०११

इकाई 4 सामाजिक परिवर्तन के स्रोत (वैदिक साहित्य, सूत्र साहित्य, पुराण, रामायण, महाभारत, धर्मशास्त्र, बौद्ध साहित्य, साहित्यिक रचनाएं, अभिलेख, विदेशी लेखकों के यात्रा–वृत्तान्त आदि)

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 सामाजिक परिवर्तन के स्रोत

- 4.2.1 वैदिक साहित्य
- 4.2.2 सूत्र साहित्य
- 4.2.3 पुराण
- 4.2.4 रामायण
- 4.2.5 महाभारत
- 4.2.6 धर्मशास्त्र
- 4.2.7 बौद्धसाहित्य
- 4.2.8 साहित्यिक रचनाएं
- 4.2.9 अभिलेख
- 4.2.10 विदेशी लेखकों के यात्रावृत्तान्त आदि

4.3 सारांश

4.4 शब्दावली

4.5 अभ्यास / बोध प्रश्न

4.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का मुख्य ध्येय समाज वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक विभिन्न सामाजिक परिवर्तनों के प्रमुख श्रोतों का उपस्थापन करना है। इसके अध्ययन से पाठकगण सामाजिक परिवर्तन के प्रमुख स्रोतों यथा वैदिक साहित्य, सूत्र साहित्य, पुराण, रामायण, महाभारत, धर्मशास्त्र, बौद्ध साहित्य इत्यादि का सामान्य परिज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक भारतीय समाज में अनेकानेक परिवर्तन हुए हैं। इन परिवर्तनों के प्रमाणभूत अनेक स्रोत हमें प्राप्त होते हैं। जिनमें क्रमानुसार वैदिक साहित्य, सूत्र साहित्य, पुराण, रामायण, महाभारत, धर्मशास्त्र, बौद्ध साहित्य, धर्मशास्त्र, संस्कृत कवियों की साहित्यिक रचनाएं, संस्कृत भाषा में सन्निहित, अभिलेख और

विदेशी लेखकों के यात्रावृत्तान्त आदि प्रमुख हैं। प्रस्तुत इकाई में इन सभी स्रोतों पर विस्तार के साथ प्रकाश डाला गया है।

4.2 सामाजिक परिवर्तन के स्रोत

4.2.1 वैदिक साहित्य

सामाजिक परिवर्तन के आदिस्रोत वैदिक साहित्य हैं। वैदिक साहित्य के अन्तर्गत वेद, उपनिषद्, ब्राह्मण ग्रन्थ और आरण्यक ग्रन्थों का परिगणन किया जाता है।

वेद – वेद से अभिप्राय है ज्ञान की राशि। इनकी संख्या चार मानी गई है – ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। ऋग्वेद में देवताओं के स्तुतिपरक मन्त्र हैं। इसमें कुल दश मण्डल, आठ अष्टक एवं १०५८० मन्त्र हैं। यजुर्वेद में यज्ञ सम्बन्धी विधि–विधान एवं मन्त्र संकलित हैं। इसमें ऋग्वेद के मन्त्रों के अलावा मौलिक गद्यांश भी प्राप्त होता है। यजुर्वेद के दो स्वरूप हैं– शुक्ल यजुर्वेद एवं कृष्ण यजुर्वेद। सामवेद में मुख्यतया ऋग्वेद के ही मन्त्रों का गान प्राप्त होता है। इसमें कुल १८७५ मन्त्र हैं। अथर्ववेद अन्तिम वेद है। इसका सम्बन्ध मनुष्य जीवन से अधिक है। इसमें २० काण्ड, ७३१ सूक्त एवं ६००० मन्त्र हैं। इसमें मुख्यरूप से मारण, उच्चाटन, जादू–टोना इत्यादि का उल्लेख प्राप्त होता है।

उपनिषद्– उपनिषद् भारतीय अध्यात्मविद्या का आधार हैं। इनमें मुख्यतया दार्शनिक विषयों यथा आत्मा, परमात्मा, मोक्ष इत्यादि का विवेचन किया गया है। प्रमुख उपनिषदों की संख्या ग्यारह मानी गई है – १) ईशावास्योपनिषद्, (२) केनोपनिषद्, (३) कठोपनिषद्, (४) प्रश्नोपनिषद्, (५) मुण्डकोपनिषद्, (६) माण्डूक्योपनिषद्, (७) तैत्तरीयोपनिषद्, (८) ऐतरेयोपनिषद्, (९) छान्दोग्योपनिषद्, (१०) बृहदारण्यकोपनिषद्, (११) श्वेताश्वतरोपनिषद्, (१२) कौशितकी उपनिषद्, और (१३) मैत्रायणी उपनिषद्।

ब्राह्मण ग्रन्थ – ब्राह्मण ग्रन्थ वैदिक संस्कृति, समाज, धर्म, सभ्यता, दर्शन को समझने में अत्यन्त उपयोगी हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों के बिना वेदों के अर्थ को समझना अत्यन्त कठिन हैं। वस्तुतः ब्राह्मण ग्रन्थ वेदों के व्याख्या ग्रन्थ हैं।

आरण्यक ग्रन्थ – जिन ग्रन्थों का चिन्तन–मनन अरण्य में होता था, वे आरण्यक ग्रन्थ में परिगणित होते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों की तरह आरण्यक ग्रन्थों का भी अपना एक विशिष्ट स्थान है। इसमें मुख्यतया प्राणविद्या का प्रतिपादन किया गया है।

प्रत्येक वेद के प्रायः अलग–अलग ब्राह्मण एवं आरण्यक ग्रन्थ उपलब्ध हैं। वेद, उपनिषद्, ब्राह्मण एवं आरण्यक ग्रन्थ का समग्र वैदिक साहित्य के अन्तर्गत आता है, जो वैदिक कालीन समाज के परिज्ञान का आधार है। वैदिक कालीन समाज एवं वर्तमान समाज के तुलनात्मक परिज्ञान का आधार वैदिक साहित्य ही है।

4.2.2 सूत्र साहित्य

वैदिक साहित्य के बाद सामाजिक परिवर्तनों का परिज्ञान सूत्र साहित्य से होता है। सूत्र साहित्य को 4 भागों में वर्गीकृत किया गया है– श्रौत सूत्र, गृह्य सूत्र, धर्म सूत्र व शुल्व सूत्र। इनका संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है–

1) **श्रौतसूत्र** – इनमें वेदाधारित यज्ञों का क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित विवेचन प्राप्त होता है।

2) **गृह्यसूत्र** – गृह्यसूत्रों में मुख्यतया कर्मकाण्ड का प्रतिपादन है। इनमें गार्हिक यज्ञों एवं उत्सव आदि से सम्बद्ध विविध विधियों निरूपण किया गया है।

3) **धर्मसूत्र** – आचार शास्त्र से सम्बन्धित सूत्रों को धर्मसूत्र में परिगणित किया जाता है।

4) **शुल्वसूत्र** – शुल्वसूत्रों में यज्ञ सैम्बन्धी वेदी निर्माण की विधियों का विवेचन किया गया है।

4.2.3 पुराण

पुराण शब्द 'पुरा' एवं 'अण' शब्दों की संधि से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ –'पुराना' अथवा 'प्राचीन' होता है। पुराण वे ग्रन्थ हैं, जो पुरातन अथवा अतीत की घटनाओं का निरूपण करते हैं। पुराण प्राचीन सभ्यता, संस्कृति एवं समाज के परिज्ञान के अति महत्त्वपूर्ण साधन हैं। पुराण सामाजिक परिवर्तनों एवं प्राचीन ऐतिहासिक घटनाओं के सशक्त स्रोत हैं। परिवर्तनों पुराण का लक्षण इस प्रकार है–

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वशानुचरितश्चेति पुराणं पञ्चलक्षणम्।।

अर्थात् जिसमें सर्ग (सृष्टि), प्रतिसर्ग (प्रलय, पुनर्जन्म), वंश (देवता व ऋषि इत्यादि के वंश), मन्वन्तर (चौदह मनु के काल), और वंशानुचरित (सूर्य चन्द्रादि वंशीय राजाओं के चरित्र) का निरूपण किया गया है, वह पुराण है। पुराण वस्तुतः वेदों का विस्तार हैं। वेदों की जटिलता को सरलतम ढंग से समझने के लिए ही महर्षि वेदव्यास ने पुराणों की रचना की थी। पुराणों की संख्या अट्ठारह मानी गई है – ब्रह्म पुराण, पद्म पुराण, विष्णु पुराण, वायु पुराण, भागवत पुराण, नारद पुराण, मार्कण्डेय पुराण, अग्नि पुराण, भविष्य पुराण, ब्रह्म वैवर्त पुराण, लिङ्ग पुराण, वाराह पुराण, स्कन्द पुराण, वामन पुराण, कूर्म पुराण, मत्स्य पुराण, गरुड़ पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण।

4.2.4 रामायण

रामायण तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं ऐतिहासिक घटनाओं का महत्त्वपूर्ण स्रोत है। रामायण महाकवि वाल्मीकि की अनुपम कृति है। इसे आदिकाव्य होने का गौरव प्राप्त है। रामायण राम एवं अयन इन दो पदों के योग से बना है, जिसका अर्थ है – भगवान राम का मार्ग अर्थात भगवान राम का जीवन मार्ग या जीवन चरित का निरूपण करने वाला ग्रन्थ ही रामायण है। रामायण की विषयवस्तु कुल सात काण्डों में समाहित है। सातों काण्डों के नाम इस प्रकार हैं– बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, लंकाकाण्ड, उत्तरकाण्ड। रामायण की कथा महर्षि बाल्मीकि ने कुल २४००० श्लोकों में उपनिबद्ध किया है। रामायण में मुख्यरूप से राम एवं राक्षस राज रावण के बीच हुए भीषण युद्ध का निरूपण है।

काण्ड के अनुसार रामायण का संक्षिप्त कथानक

बालकाण्ड – बालकाण्ड में मुख्य रूप से महाराज दशरथ को उनकी तीन रानियों से चार पुत्र की प्राप्ति की कथा वर्णित है। इसमें राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के बालस्वरूप का विवेचन किया गया है। इसी काण्ड में महर्षि विश्वामित्र अपने यज्ञ की रक्षा के लिए राजा दशरथ से राम–लक्ष्मण को मांग कर ले जाते हैं, और उन्हें

शस्त्रविद्या प्रदान करते हैं। **अयोध्याकाण्ड** में राम के विवाह के कुछ समय पश्चात् राजा दशरथ ने राम का राज्याभिषेक करना चाहते थे किन्तु कैकेयी ने उनसे वरदान स्वरूप भरत के लिए राज्य एवं राम को चौदह वर्षों के लिये वनवास मांग लिया कि राम को वन में भेज दिया जाये। इसी काण्ड में महाराज दशरथ पुत्र–वियोग में अपने प्राण का परित्याग कर देते हैं। **अरण्यकाण्ड** की सबसे बड़ी घटना रावण द्वारा माता सीता का अपहरण करना है। इसी काण्ड में लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा की नाक काटने की घटना भी वर्णित है। **किष्किन्धाकाण्ड** में राम और सुग्रीव की मित्रता और राम के द्वारा वानरराज बालि के वध की कथा वर्णित है। **सुन्दरकाण्ड** में हनुमान द्वारा माता सीता का पता लगाए जाने एवं लंकादहन की घटना प्रमुखता से उपस्थापित है। **लंकाकाण्ड** में राम रावण युद्ध एवं राम द्वारा लंकापति रावण का समूल विनाश वर्णित है। **उत्तरकाण्ड** रामायण का उपसंहार है। इसमें राम सीता, लक्ष्मण और अपने अनुचरों के साथ अयोध्या वापिस लौटते हैं। इसी काण्ड में सीता के पृथ्वी समाहित होने की घटना भी वर्णित है।

4.2.5 महाभारत

महाभारत के लेखक महर्षि वेदव्यास हैं। इसके तीन नाम प्राप्त होते हैं– जय, भारत और महाभारत। महाभारत में कुल एक लाख से भी अधिक पद्य हैं, इस प्रकार महाभारत एक विपुलकाय ग्रन्थ है जो अपने समय की सामाजिक परिवर्तनों का सबसे बड़ा साक्षी भी है। महाभारत की कथावस्तु को महर्षि व्यास ने अट्ठारह पर्वों में समाहित किया है। महाभारत के पर्वों के नाम इस प्रकार हैं – आदि पर्व, सभा पर्व, वन पर्व, विराट पर्व, उद्योग पर्व, भीष्म पर्व, द्रोण पर्व, अश्वमेधिक पर्व, महाप्रस्थानिक पर्व, सौप्तिक पर्व, स्त्री पर्व, शांति पर्व, अनुशासन पर्व, मौसल पर्व, कर्ण पर्व, शल्य पर्व, स्वर्गारोहण पर्व तथा आश्म्वासिक पर्व। महाभारत में कौरव एवं पाण्डवों के बीच हुए युद्ध का प्रमुखता से उपस्थापन किया गया है। इसमें जहाँ एक ओर धृतराष्ट्र के सौ पुत्र कौरव थे तो वहीं दूसरी ओर पांडु के पाँच पुत्र पांडव थे।

महाभारत की संक्षिप्त कथा – महाभारत की कथा कुल १८ पर्वों में सन्निहित है। इसके प्रथम अर्थात् **आदि पर्व** में कौरव एवं पाण्डव राजकुमारों का जन्म और उनके लालन–पालन की कथा वर्णित है। सभापर्व में विशेषरूप से द्यूत क्रीड़ा, इंद्रप्रस्थ का निर्माण और पाण्डवों का वनवास निरूपित है। **अरयण्कपर्व** में पाण्डवों के १२ वर्ष के वनवास की घटना वर्णित है। **विराटपर्व** में अज्ञातवास के समय पाण्डवों का राजा विराट के राज्य में रहना विवेचित है। **उद्योगपर्व** में कौरव एवं पाण्डवों के मध्य संभावित युद्ध को टालने के लिए श्रीकृष्ण के प्रयास एवं युद्ध की तैयारियों का वर्णन है। **भीष्मपर्व** में महाभारत युद्ध का पहला भाग निरूपित है, जिसमें भीष्म कौरवों के सेनापति बनते हैं, और अन्त में घायल होकर मृत्युशैय्या पर पड़ जाते हैं। **द्रोणपर्व** में भीष्म के पश्चात द्रोण सेनापति बनते हैं वीरगति को प्राप्त होते हैं। **कर्णपर्व** में कर्ण कौरवसेना का नेतृत्व करता हुआ मारा जाता है। **शल्यपर्व** में महाराज शल्य कौरवों की ओर से लड़ते हुए मृत्यु का वरण करते हैं। **सौप्तिकपर्व** में अश्वत्थामा द्वारा द्रौपदी के सोये हुए पुत्रों का वध दिखलाया गया है। **स्त्रीपर्व** में स्त्रियों का विलाप वर्णित है। **शांतिपर्व** में युधिष्ठिर के राज्याभिषेक का निरूपण है। **अनुशासनपर्व** में भीष्म का अन्तिम उपदेश वर्णित है। तत्पश्चात् वे अपने शरीर का परित्याग कर देते हैं। **अश्वमेधिकापर्व** में महाराज युधिष्ठिर द्वारा अश्वमेध का आयोजन किया जाता है। **आश्रम्वासिकापर्व** धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती का वन की ओर प्रस्थान निरूपित है। **मौसुलपर्व** में यदुवंशियों की परस्पर लड़ाई का निरूपण है। **महाप्रस्थानिकपर्व** में

युधिष्ठिर और उनके भाइयों की सद्गति प्राप्त करने की घटना का उल्लेख है। **स्वर्गारोहणपर्व** में पांडवों की स्वर्ग यात्रा का निरूपण किया गया है।

4.2.6 धर्मशास्त्र

भारतीय धार्मिक विधि–विधानों के निरूपक ग्रन्थ धर्मशास्त्र के अन्तर्गत परिगणित होते हैं। धर्मशात्रों के अन्तर्गत सभी स्मृतिग्रन्थों को समाहित किया जाता है। धर्मशास्त्र का अभिप्राय है, धर्म सम्बन्धी अनुशासन करने वाले ग्रन्थ। अर्थात वे ग्रन्थ धर्मशास्त्र में माने जाते हैं, जिनमें धर्म सम्बन्धी नियमों का नियमन किया गया है। धर्मशास्त्र भी सामाजिक परिवर्तनों को अभिव्यंजित करते हैं। प्रमुख धर्मशास्त्र के ग्रन्थ हैं– मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, अत्रि स्मृति, विष्णु स्मृति, हारीत स्मृति, कात्यायन स्मृति, बृहस्पति स्मृति, पराशर स्मृति, व्यास स्मृति, गौतम स्मृति, वशिष्ठ स्मृति, आपस्तम्ब स्मृति।

4.2.7 बौद्ध साहित्य

बौद्ध साहित्य भी सामाजिक परिवर्तनों को जानने के अति महत्त्वपूर्ण माध्यम हैं। बौद्ध साहित्य के अन्तर्गत मुख्यतया त्रिपिटकों का समावेश किया जाता है – विनय पिटक, सुत्त पिटक और अभिधम्म पिटक। विनय पिटक में मुख्यरूप से भिक्षु–भिक्षुणी के लिए आचारण सम्बन्धी नियमों का उल्लेख किया गया है। सुत्तपिटक में महात्मा बुद्ध के सिद्धांतों का तार्किक विवेचन एवं संग्रह है। अभिधम्म पिटक में धार्मिक व्याख्या का संग्रह प्राप्त होता है।

4.2.8 साहित्यिक रचनाएँ

संस्कृत भाषा की साहित्यिक रचनाएं भी सामाजिक परिवर्तनों को जानने के अति महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। इसके अन्तर्गत महाकवि भास, कालिदास, भवभूति, भारवि माघ इत्यादि की रचनाओं का परिगणन किया जाता है। महाकवि भास के तेरह नाटक हैं – प्रतिमानाटक, अभिषेकनाटक, मध्यम व्यायोग, कर्णभार, पंचरात्र, उरुभंग, बाल चरित, दूतवाक्य, दूत घटोत्कच, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, स्वप्नवासवदत्तम्, अविमारक, दरिद्र चारुदत्त इत्यादि। महाकवि कालिदास की सात रचनाएं उपलब्ध होती हैं, जिनमें तीन नाटक – अभिज्ञान शाकुन्तलम, विक्रमोर्वशीयम् और मालविकाग्निमित्रम दो महाकाव्य – रघुवंशम् और कुमारसंभवम और दो खण्डकाव्य हैं – मेघदूतम् तथा ऋतुसंहार। इसके अतिरिक्त भवभूति के नाटक प्राप्त होते हैं – महावीरचरितम उत्तररामचरितम एवं मालतीमाधव। महाकवि भारवि प्रणीत किरातार्जुनीयम महाकाव्य एवं कविवर माघ विरचित शिशुपालवध भी सामाजिक परिवर्तनों को जानने एवं समझने के सशक्त साधन हैं। इन रचनाओं में कवियों ने तत्कालीन सामाजिक दशा का व्यवस्थित निरूपण किया है।

4.2.9 अभिलेख

पत्थर अथवा धातु जैसी कठोर सतहों पर उत्कीर्ण किये गये पाठन सामाग्री अभिलेख से अभिप्रेत हैं। इनका प्रयोग प्राचीन काल में अत्यधिक होता था। अभिलेख प्राचीन कालीन समाज के परिज्ञान का उन्नत साधन हैं। कुछ प्रमुख अभिलेखों के नाम इस प्रकार हैं – अशोक के अभिलेख, जूनागढ़ शिलालेख, महरौली शिलालेख, इलाहाबाद स्तंभ शिलालेख, नासिक शिलालेख, एहोल शिलालेख, नानाघाट शिलालेख। इन शिलालेखों का महत्त्व ऐतिहासिक दृष्टि से तो है ही, सामाजिक दृष्टि से भी ये शिलालेख अतीव महत्त्वपूर्ण हैं।

4.2.10 विदेशी लेखकों के यात्रा वृत्तान्त आदि

सामाजिक परिवर्तनों का परिज्ञान विदेशी यात्रियों के यात्रा वृत्तान्त से भी होता है। भारत आने वाले प्रमुख विदेशी यात्रियों में मेगस्थनीज, डाइमेकस, डायोनिसियस, टॉलमी, प्लिनी, फाहियान, ह्वेनसांग, इत्सिंग इत्यादि हैं, जिन्होंने ग्रन्थ लिखकर भारत दौरे से जुड़ी अपनी यात्रा का विस्तृत विवेचन किया है। इसे यात्रावृत्तान्त के नाम से जाना जाता है।

4.3 सारांश

साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज में हुए किसी भी प्रकार के परिवर्तन का यदि वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने के लिए तत्कालीन साहित्य का अवलोकन परमावश्यक है। भारतीय समाज में वैदिक काल से लेकर अद्यावधिपर्यन्त अनेकानेक परिवर्तन हुए हैं। इनके सम्यक ज्ञान के लिए वैदिक काल से लेकर आज तक के साहित्य का क्रमबद्ध अवलोकन अपेक्षित है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर प्रस्तुत इकाई में वैदिक साहित्य, सूत्र साहित्य, पुराण, रामायण, महाभारत, धर्मशास्त्र, बौद्धसाहित्य, साहित्यिक रचनाओं के साथ–साथ विभिन्न अभिलेखीय साक्ष्यों तथा प्रमुख विदेशी यात्रियों (जिन्होंने भारत से सम्बन्धी अपनी यात्रावृत्तान्त को लिखा था), का संक्षिप्त निरूपण किया गया है।

4.4 शब्दावली

स्रोत = साक्ष्य अथवा उद्‌गम स्थल

वृत्तान्त = बीती हुई घटना का विवरण

काण्ड = घटना

4.5 अभ्यास/बोध प्रश्न

1. ऋग्वेद सबसे प्राचीन वेद है। (सत्य/असत्य)
2. वेदों की संख्या चार है। (सत्य/असत्य)
3. उपनिषद् अध्यात्मविद्या से सम्बन्धित हैं। (सत्य/असत्य)
4. ब्राह्मणग्रन्थों में वेदों की व्याख्या की गई है। (सत्य/असत्य)
5. रामायण में कौरवों की कथा वर्णित है। (सत्य/असत्य)
6. महाभारत के लेखक बाल्मीकि हैं। (सत्य/असत्य)
7. रामायण में कुल सात काण्ड हैं। (सत्य/असत्य)
8. महाभारत का कथानक पर्वों में उपनिबद्ध है। (सत्य/असत्य)
9. बौद्ध धर्म में पिटकों की संख्या तीन मानी गई है। (सत्य/असत्य)
10. नाटककार भास की कुल तेरह रचनाएं प्राप्त होती हैं। (सत्य/असत्य)

4.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य
2. सत्य
3. सत्य
4. सत्य
5. असत्य (सही उत्तर है – रामायण में राम की कथा वर्णित है, जबकि कौरवों की कथा महाभारत में प्राप्त होती है।)
6. सत्य (सही उत्तर है – वेदव्यास ने महाभारत की रचना की थी।)
7. सत्य
8. सत्य
9. सत्य
10. सत्य।

4.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- भारतीय दर्शन की रूपरेखा, प्रो. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, २०१२
- संस्कृत–हिन्दी कोश, बामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, १९९७
- संस्कृत साहित्य का वृहद् इतिहास, डॉ. पुष्पा गुप्ता, इस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, २०११।

इकाई 5 धर्मशास्त्र सामाजिक संस्थानों के अध्ययन की विशेष शाखा के रूप में

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 धर्मशास्त्र सामाजिक संस्थानों के अध्ययन की विशेष शाखा के रूप में

- 5.2.1 धर्मशास्त्र का अर्थ
- 5.2.2 सामाजिक संस्थानों के अध्ययन की विशेष शाखा के रूप में धर्मशास्त्र
- 5.2.3 धर्मशास्त्रीय ग्रंथ
- 5.2.4 धर्मशास्त्रीय ग्रंथों का निर्माण–काल
- 5.2.5 धर्मशास्त्रीय ग्रंथों में वर्णित सामाजिक संस्थानों की भूमिका

5.3 धर्मशास्त्रीय ग्रंथों में प्रतिपादित सामाजिक संस्थान

- 5.3.1 वर्ण संस्थान
- 5.3.2 आश्रम संस्थान
- 5.3.3 यज्ञ संस्थान
- 5.3.4 संस्कार संस्थान
- 5.3.5 विवाह संस्थान

5.4. सारांश

5.5. शब्दावली

5.6 बोध/अभ्यास प्रश्न

5.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.0. उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरांत आप–

- धर्मशास्त्रीय ग्रंथों से अवगत हो जाएंगे ।
- धर्मशास्त्रीय ग्रंथों के निर्माण काल से अवगत हो जाएंगे ।
- सामाजिक संस्थानों की भूमिका से अवगत हो जाएंगे ।
- सामाजिक संस्थानों के अध्ययन की विशेष शाखा के रूप में धर्मशास्त्र किस प्रकार सिद्ध होते हैं? इसका विस्तृत अध्यापन करेंगे।
- धर्मशास्त्रीय ग्रंथों में प्रतिपादित प्रमुख सामाजिक संस्थान कौन–कौन से हैं? इस संदर्भ से भी अवगत होने का अवसर प्राप्त होगा।

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई के अंतर्गत प्राचीन भारतीय सामाजिक संस्थानों के परिचय के साथ–साथ उनके आविर्भाव के संक्षिप्त इतिहास को परिचय स्वरूप प्रस्तुत किया गया है । भारतीय सभ्यता– संस्कृत, धर्म–दर्शन एवं आचार– विचार के सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति में सामाजिक संस्थान के रूप में वर्ण, आश्रम, पञ्च महायज्ञ, संस्कार, विवाह तथा यज्ञ संस्था आदि का परिचय करवाया गया है। इसके साथ–साथ इन संस्थानों की मानव जीवन में क्या भूमिका रही है, इस पर भी प्रकाश डाला गया है । सामाजिक संस्थानों के अध्ययन की एक विशिष्ट शाखा के रूप में किस प्रकार प्रतिष्ठित होते हैं, यह भी इस इकाई के अंतर्गत वर्णित किया गया है। धर्मशास्त्र वस्तुतः मानव की आचार–संहिता है। इनका निर्माण काल क्या है? इस विषय का भी उल्लेख इस इकाई के अंतर्गत किया गया है। इस संदर्भ में प्राप्त एवं पाश्चात्य विद्वानों एवं उनके ग्रंथों का प्रस्तुतीकरण किया गया है।

5.2 धर्मशास्त्र सामाजिक संस्थानों के अध्ययन की विशेष शाखा के रूप में

समाज शब्द सम+अज् (गत्यर्थक) से मिलकर बना है, जिसका अर्थ है– मिलकर चलना, बैठना, व्यवहार करना आदि। यह वह संस्था है जिससे मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति तथा किसी विशेष उद्देश्य से स्थापित करता है। संसार में कोई भी प्राणी एकांकी जीवन व्यतीत नहीं करता। मनुष्य भी संगठित रूप से समाज में रहता है और अपना विकास करता है। किसी भी समाज की व्यवस्था एवं संचालन में अनेक संस्थाएं सहायक होती हैं जिनके अपने उद्देश्य, संरचना व कार्य होते है। सामाजिक संस्थाएं मानव धर्म से अनुप्राणित होती है और मानव धर्म समाज–शास्त्र व संस्थाओं का प्राण होता है। समाज में छोटे व बड़े स्तर पर मानव के लिए आवश्यक अनेक संस्थाएं कार्यरत होती हैं। इसी कड़ी में धर्मशास्त्र सामाजिक संस्थानों के लिए एक विशेष शाखा के रूप में कार्य करता है।

5.2.1 धर्मशास्त्र का अर्थ

धर्मशास्त्र शब्द दो शब्दों के योग से बना हुआ है, जिसमें पहला है – धर्म और दूसरा है – शास्त्र इन दोनों का शाब्दिक अर्थ जानना परम आवश्यक है। धर्म शब्द पुलिंग और नपुंसक लिंग दोनों में प्रयुक्त हुआ है। पंडित द्वारका प्रसाद शर्मा चतुर्वेदी एवं पंडित तारिणीश झा ने संस्कृत– शब्दार्थ कौस्तुभ क्रमशः **ध्रियते लोकोऽनेन, धरति लोकं वा तथा धरति लोकान् ध्रियते पुण्यात्मभिः इति वा** व्युत्पत्ति करते हुए धृ धातु से मन् प्रत्यय करके धर्म शब्द को पुल्लिङ्ग और नपुंसक लिङ्ग दोनों में प्रयुक्त हुआ बतलाया है । इसका अभिप्राय है – कर्तव्य, जाति, सम्प्रदाय आदि के प्रचलित आचार का पालन, कानून, प्रचलन, दस्तूर, प्रथा, अध्यादेश, अनुविधि, धार्मिक तथा नैतिक गुण तथा वह कर्म जिसके करने से करने वाले का इस लोक में अभ्युदय हो और परलोक में मोक्ष की प्राप्ति हो। पी. वी. काणे ने धर्मशास्त्र के प्रथम अध्याय में उल्लेख किया है कि ऋग्वेद की कतिपय ऋचाओं में यह शब्द धर्मन् के रूप में सामान्यतः नपुंसक लिंग में प्रयुक्त हुआ है। धृ धातु से निष्पन्न इस शब्द का अर्थ है – धारण करना, आलम्बन देना तथा पालन करना। ऋग्वेद की 1.1871, 10.92.2 तथा 10. 21.3 में धर्म शब्द पुल्लिंग में प्रयुक्त हुआ है। प्रायः ऋग्वेद में अधिक स्थलों पर धर्म शब्द धार्मिक विधियों या धार्मिक क्रिया संस्कारों के रूप में ही प्रयुक्त हुआ है।

उदाहरण स्वरूप ऋग्वेद 1.22.18, 5.26.6, 7.43.24 तथा 9.64.1 आदि स्थलों पर धर्म शब्द धार्मिक है । डॉ. काणे महोदय का मत है कि ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के 164वें सूक्त का 43वां मन्त्र तथा दशम मण्डल के 90वें सूक्त का 16वां मन्त्र–**तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्** उपर्युक्त कथनों को प्रमाणिक करता हैं।

शास्त्र शब्द का अर्थ भी उपर्युक्त दोनों शब्द कोषकारों ने एक जैसा ही किया है। शास् धातु से ष्ट्रन प्रत्यय करके शास्त्र शब्द निष्पन्न है, जिसका अर्थ दोनों विद्वानों ने क्रमशः आज्ञा, समादेश, नियम, विधि, वेदविधि, धर्मशास्त्र की आज्ञा, धार्मिक ग्रन्थ, वेद एवं धर्मशास्त्र तथा जन–साधारण के हित के लिए विधान बतलाने वाले धार्मिक ग्रन्थ एवं किसी विशिष्ट विषय का वह समस्त ज्ञान जो ठीक क्रम से संग्रह करके रखा गया हो । संस्कृत विद्वानों की परम्परा शास्त्र शब्द की व्युत्पति किंवा लक्षण **शासनात् शास्त्रं तथा शंसनात् शास्त्रं** इस प्रकार भी करती है जिसका क्रमशः अर्थ है– मनुष्य को किसी कार्य में प्रवृत्त करना या निवृत्त करना तथा गूढ़तत्त्व का (शंसन) प्रतिपादन करने वाला ग्रन्थ भी शास्त्र कहलाता है अतः धर्मशास्त्र का शाब्दिक अर्थ मानव जीवन से संबंधित उसकी आचार–संहिता उसके निजधर्म के रूप में परिलक्षित होता है।

5.2.2 सामजिक संस्थानों की विशेष शाखा के रूप में धर्मशास्त्र

वस्तुतः धर्मशास्त्र ग्रंथों में मानव जीवन से संबद्ध धर्म के गुण तत्वों का अनुशंसन एवं प्रतिपादन ही किया गया है। संसार के प्रत्येक वर्ग की वर्ण अथवा जाति– उपजाति से संबद्ध किसी भी व्यक्ति विशेष के लिए धर्मशास्त्र की आज्ञा उसके कल्याण का साधन है, इसमें लेशमात्र का भी संदेह नहीं है। धर्मशास्त्र मानव मात्र के कल्याण की सदाचार संपन्न शिक्षाएं प्राप्त कराने वाली विशिष्ट संस्था है इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। जैसा की मनुस्मृति में कहा गया है कि धर्म के संबंध में जिज्ञासा रखने वालों के लिए परम प्रमाण श्रुति है– **धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमंश्रुतिः।।** (मनु०–2/13) इसी प्रकार मनुस्मृति के द्वितीय अध्याय में बताया गया है कि यदि मनुष्य वेद और स्मृति में कहे हुए धर्म को करता है तो इस संसार में कीर्ति (यश) को प्राप्त करता है तथा मरणोपरांत निश्चित ही परम सुख की प्राप्ति करता है–

श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन्हि मानवः ।
इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ।। (मनु० 2/9)

श्रुति क्या है तथा धर्म शास्त्र क्या है? इस विषय का भी वर्णन मनुस्मृति में किया गया है।मनुस्मृति के द्वितीय अध्याय में इन प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहा गया है–

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः ।
ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ ।। (मनु० 2/10)

अर्थात् वेद को शुद्धि और धर्म शास्त्र को स्मृति जाना चाहिए।ये दोनों समस्त विषयों में तर्कणा रहित हैं, क्योंकि इनसे ही धर्म की उत्पत्ति हुई है । अब प्रश्न उठता है कि धर्म क्या है? धर्म किसे कहते हैं? तो इसके उत्तर में व्यासस्मृति एवं में कहा गया है–

धर्मं यो बाधते धर्मः स न धर्मः कदाचन ।
अविरोधी तु यो धर्मः स धर्मः सद्भिरुच्यते ।।

तस्माद्विरोध धर्मस्य निश्चित्य गुरुलाघवम् ।
तयोर्भूयस्तनं विद्वान्कुर्याद्धर्मविनिर्णयः ।।

अर्थात् जो धर्म अन्य धर्म को बाधित करता है, वह धर्म धर्म नहीं है। जो धर्म किसी अन्य धर्म का विरोधी न हो उसे सत्यवादियों द्वारा धर्म कहा गया है। परस्पर दो धर्मों के विरोध की स्थिति में उसमें गुरु–लाघव का निर्णय करके विद्वानों को श्रेष्ठ धर्म का निर्णय करना चाहिए।धर्म का लक्षण बतलाते हुए मनुस्मृति के द्वितीय अध्याय में कहा गया है–

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ।। (मनु० 2/12)

अर्थात् वेद, स्मृति, सदाचार और (जो विषय विकल्प से कहा गया है उसमें) अपनी अनुकूलता(आत्मसन्तुष्टि) के अनुसार कर्म करना यह चार प्रकार का धर्म का साक्षात लक्षण है ।अब प्रश्न उठता है कि रुचि के अनुसार करणीय कर्तव्य कर्म (धर्म) कौन हैं ? उनका लक्षण क्या है ? प्रश्न का उत्तर मनुस्मृति के छठे अध्याय में दिया गया है–

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ।। (मनु० 6/92)

अर्थात् धैर्य (संतोष), क्षमा, मन को वश में रखना, न्याय से धन ग्रहण करना, पवित्रता, इंद्रियों को वश में करना, बुद्धि, विद्या, सत्य और अक्रोध (क्रोध न करना) यह धर्म के 10 लक्षण हैं। धर्म के इन 10 लक्षणों को प्रत्येक मनुष्य को धारण करना चाहिए। याज्ञवल्क्यस्मृति में भी धर्म के साधनों का उल्लेख करते हुए कहा गया है–

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
दानं दमो दया क्षान्तिः सर्वेषां धर्मसाधनाम् ।।(याज्ञवल्क्यस्मृति–1/5/122)

अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना) शौच (पवित्रता) तथा इंद्रियों पर नियंत्रण रखना, दान, अंतः करण पर संयम तथा शांति यह सब धर्म के साधन हैं ।

अब प्रश्न उठता है कि धर्म के जो उपर्युक्त यह 10 लक्षण बतलाए गए हैं, इनका मानव जीवन में क्या प्रयोजन (उद्देश्य) हैं ? तो इसके उत्तर स्वरूप मनुस्मृति के षष्ठ अध्याय के इस श्लोक के अग्रिम श्लोक में कहा गया है–

दश लक्षणानि धर्मस्य ये विप्राः समधीयते ।
अधीत्य चानुवर्तन्ते ते यान्ति परमां गतिम् ।। (मनु० 6/93)

अर्थात् धर्म के इन 10 लक्षणों को जो ब्राह्मण पढ़ते हैं और पढ़ कर उसको अंगीकृत करते हैं, वे परम गति (मुक्ति) को प्राप्त करते हैं । मुक्ति से बढ़कर मानव जीवन का और कोई उद्देश्य नहीं है । वस्तुतः मानव जीवन मुक्ति के निमित्त ही मिला है । क्योंकि–

गायन्ति देवाः किल गीतकानि , धन्यास्तु ते भारत भूमिभागे ।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते, भवन्ति भूयः पुरुषः सुरत्वात् ।। (विष्णुपुराण–3/2/24)

अर्थात् देवगण भी यह गीत गाते रहते हैं कि जिन्होंने स्वर्ग और अपवर्ग के मार्गभूत भारतभूमि में जन्म लिया है। वे पुरुष हम देवताओं की अपेक्षा धन्य हैं । अब प्रश्न उठता है कि विप्र किसे माना जाए किंवा विप्र किसे कहते हैं ? तो इसके उत्तर में एक श्लोक अत्यंत प्रसिद्ध है–

जन्मनः जायते शूद्रः संस्कारैर्द्विज उच्यते ।
वेद पाठात् भवेत् विप्रः ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः ।।

अर्थात् जन्म से प्रत्येक वर्ग और वर्ग का व्यक्ति शूद्र ही होता है। उसकी शिक्षा–दीक्षा और संस्कार से उसे द्विज (पवित्र कारक संस्कार संपन्न व्यक्ति) कहा जाता है। वेद पाठ करने से विप्र पदवी तथा ब्रह्म का ज्ञाता होने से ब्राह्मण कहा जाता है। इस संदर्भ का सत्यापन मनुस्मृति के इस पद से हो जाता है, जिसमें कहा गया है –

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चौति शूद्रताम् ।
क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च ।। (मनु0–10/65)

अर्थात् जैसे शूद्र ब्राह्मण हो जाता है और ब्राह्मण शूद्र हो जाता है वैसे ही क्षत्रिय वैश्य से उत्पन्न हुए शूद्र भी क्षत्रिय और वैश्य हो जाते हैं। संसार के प्रत्येक वर्ण का व्यक्ति यदि वह वेदाध्ययन, शास्त्राध्ययन नहीं करता है तथा धर्म का पालन नहीं करता है तो वह अपने वर्ण से पदच्युत हो जाता है । ऐसा मनुस्मृतिकार का स्पष्ट कथन है–

वेदमेव सदाऽभ्यस्येत् तपस्तप्यन् द्विजोत्तमः ।
वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते ।।

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ।। (मनु0–2/166,168)

अर्थात् ब्राह्मण तप करता सदा वेद का ही अभ्यास करता रहे, क्योंकि इस लोक में वेद का अभ्यास ही ब्राह्मण का बड़ा भारी तप कहा गया है। जो ब्राह्मण वेद को ना पढ़कर और शास्त्रों में अत्यंत परिश्रम करता है, वह जीते जी कुटुंब सहित शीघ्र शूद्र हो जाता है। इसी प्रकार का एक प्रसंग प्रमाण स्वरूप महाभारत के वनपर्व में सर्पयोनि को प्राप्त राजा नहुष और महाराज युधिष्ठिर के संवाद में मिलता है। सर्प स्वरूप राजा नहुष महाराज युधिष्ठिर से प्रश्न करते हैं–

चातुवर्ण्यं प्रमाणं च सत्यं ब्रह्म चैव हि ।
शूद्रेष्वपि च सत्यं च दानमक्रोध एव च ।।
आनृशंस्यमहिंसा च घृणा चैव युधिष्ठिर ।। (श्रीमहाभारत–वनपर्व–180/23)

अर्थात् हे महाराज युधिष्ठिर! सत्य एवं प्रमाण भूत ब्रह्म तो चारों वर्णों के लिए हितकर है। सत्य, दान, आक्रोध, क्रूरता का अभाव, अहिंसा और दया आदि सद्गुण तो शूद्र में भी रहते हैं। तब महाराज युधिष्ठिर ने सर्प के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा–

शूद्रे तु यद् भवेल्लक्ष्म द्विजे तच्च न विद्यते ।
न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो न च ब्राह्मणः ।।

यत्रैतल्लक्ष्यते सर्प वृत्तं स ब्राह्मणः स्मृतः ।
यत्रैन्न भवेत् सर्प तं शूद्रमिति निर्दिशेत्।। (श्रीमहाभारत, वनपर्व– 180/25–26)

अर्थात् यदि शूद्र में सत्य आदि उपर्युक्त लक्षण हैं और ब्राह्मण में नहीं तो वह शूद्र शूद्र नहीं है और वह ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं है। सर्प ! जिसमें ये सत्य आदि लक्षण विद्यमान हों, वह ब्राह्मण माना गया है और जिसमें इन लक्षणों का अभाव हो, उसे शूद्र कहना चाहिए।

इस प्रकार धर्मशास्त्रीय ग्रंथों में मानव जीवन को धन्य बनाने के लिए सत्य और सदाचार के मार्ग उपदिष्ट हैं। सत्य एवं सदाचार के मार्ग पर चलकर प्रत्येक वर्ग का मानव अपना लौकिक और पारलौकिक कल्याण कर सकता है। सत्य, सदाचार, उत्तम सात्विक आचार–विचार के मार्ग पर चलने वाले लोगों को संसार में महापुरुष कहा जाता है । इन महापुरुषों के द्वारा बतलाये गए मार्ग पर ही सामान्य जन चला करते हैं और अपना जीवन सफल करते हैं। अब प्रश्न उठता है कि श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा जिस पर चला जाता है ? वह मार्ग कौन है ? महाभारत के वनपर्व में यक्ष–युधिष्ठिर संवाद के अंतर्गत यक्ष द्वारा प्रश्न किया गया कि युधिष्ठिर 'कः पन्थाः' अर्थात् पन्थ (मार्ग) कौन है? तब युधिष्ठिर ने उत्तर दिया–

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना, नैको ऋषिर्यस्य मतं प्रमाणम् ।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां, महाजनो येन गतः स पन्थाः ।।

(श्रीमहाभारत, वनपर्व–313/117)

भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भग्वद्गीता में कहा है–

यद्यदाचरितो श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणंकुरुते लोकस्तदनुवर्तते ।। (श्रीमद्भग्वतगीता–3/21)

अर्थात् जैसा–जैसा आचरण हमारे श्रेष्ठ महापुरुषों (पूर्वजों) द्वारा किया गया है। वही बाद के लोगों द्वारा किया जाना चाहिए। वे जो प्रमाणित करते हैं, लोक उसका ही अनुवर्तन करता है । श्रेष्ठजन ही महापुरुष हैं । महापुरुषों के लक्षण का निर्धारण करते हुए महाभारत में कहा गया है–

न ते चालयितुं शक्या धर्मव्यापारकारिणः ।
न तेषां भिद्यते वृत्तं यत्पुरा साधुभिः कृतम् ।।

न त्रासिनो न चपला न रौद्राः सत्पथे स्थिताः ।
ते सेव्याः साधुभिर्नित्यं येष्वहिंसा प्रतिष्ठिता ।।

(श्रीमहाभारत, शान्तिपर्व –158/27–28)

अर्थात् महापुरुषों को सत्कर्म से विचलित नहीं किया जा सकता। वे केवल धर्म के अनुष्ठान में तत्पर रहते हैं। पूर्व के श्रेष्ठ पुरुषों ने जिसका पालन किया है, उसी सदाचार का वे भी पालन करते हैं। उनका वह आचार कभी नष्ट नहीं होता। वह किसी को भी नहीं दिखाते, चपलता नहीं करते, उनका स्वभाव किसी के लिए भयंकर नहीं होता । वे सदा सन्मार्ग में ही स्थित रहते हैं । उनमें अहिंसा नित्य प्रतिष्ठित होती है। ऐसे श्रेष्ठ पुरुषों का सदा सेवन करना चाहिए । इस प्रकार से ही लोक कल्याण संभव है। इन्हीं सब लोक–परलोक कल्याणकारी मार्गों का धर्मशास्त्रीय ग्रंथों में पदे–पदे वर्णन किया गया है। इन्हीं समग्र कारणों से धर्मशास्त्रीय ग्रंथों को सामाजिक संस्थानों के अध्ययन की विशेष शाखा के रूप में प्रतिष्ठापित किया जाता है।

5.2.3 धर्मशास्त्रीय ग्रंथ

मनुस्मृति के द्वितीय अध्याय में कहा गया है– **श्रुतिस्तुवेदोविज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः।।** अर्थात् श्रुतियों को वेद तथा स्मृतियों को धर्मशास्त्र जानना चाहिए। याज्ञवल्क्यादि स्मृतियों में उनके रचनाकारों को धर्मशास्त्रकार कहा गया है।

पराशरस्मृति में 18 धर्मशास्त्रकारों का उल्लेख मिलता है। स्मृतिरत्न ग्रंथ में 19 धर्मशास्त्रकारों का उल्लेख किया गया है। यमस्मृति में 21 धर्मशास्त्रकार गिनाए गये हैं। शंखस्मृति में 20 धर्मशास्त्रकारों का वर्णन प्राप्त होता है। स्मृतिसंग्रह में 21 धर्मशास्त्र के रचयिताओं का वर्णन मिलता है। विष्णुधर्मोत्तरपुराण, रामायण एवं महाभारत आदि ग्रंथों के समीक्षक विद्वानों ने 18 पुराणों तथा रामायण और महाभारत के सहित मनु आदि 36 स्मृतियों को धर्मशास्त्र के ग्रंथों के रूप में प्रतिष्ठापित किया है। प्रयोगपारिजात नामक ग्रंथ में मन्वादि 36 स्मृतियों के अतिरिक्त अन्य स्मृतियों का उल्लेख करते हुए कहा गया है–

मनुवृहस्पतिर्दक्षो गौतमोऽथ यमोऽंगिराः ।
योगीश्वराः प्रचेताश्च शातातपपराशरौ ।।

संवर्त्तोशनसौ शङ्खलिखितावत्रिरेव च ।
बिष्वापस्तम्बहारीत धर्मशास्त्रप्रर्वतकाः ।।

एतेह्यष्टादश प्रोक्ता मुनयो नियतव्रताः ।
जाबालिर्नाचिकेतश्चस्कन्दो लौगक्षिकाश्यपौ ।।

व्यासः सनत्कुमारश्च शन्तनुर्जनकस्तथा ।
व्याघ्रः कात्यायनश्चैव जातूकर्ण्य कपिञ्जलः ।।

बौधायनश्च कणादो विश्वामित्रस्तथैव च ।
पैठीनसिर्गोभिलश्चेत्युप– स्मृतिविधायकाः ।।

वशिष्ठो नारदश्चैव सुमन्तुश्च पितामहः ।
विष्णुः काष्णाजिनः सत्यव्रतो गार्ग्यश्च देवलः।।

जमदग्निर्भरद्वाजः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
आत्रेयश्च गवेयश्च मरीचिर्वत्स एव च ।

पारस्करश्चर्श्यश्रृंगो वैजाश्वापएतथैव च ।
इत्येते स्मृतिकर्त्तारः एकविंशतिरीरिताः ।
एतैर्यानि प्रणीतानि धर्मशास्त्राणि वै पुरा।।

(वीरमित्रोदय, परिभाषाप्रकाश, प्रथम खण्ड, पृ. सं.– 18, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, संस्करण–1987) इसके अतिरिक्त धर्मशास्त्र का वृहद् इतिहास– उ.प्र. हिंदी संस्थान, डॉ. पी. वी. काणे– भाग –1 तथा धर्मशास्त्र का वृहद् इतिहास– डॉ. दिलीप कुमार नाथाणी, भाग– 1 में विस्तार के साथ द्रष्टव्य हैं ।

1.2.2 धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों का निर्माणकाल

धर्मशास्त्रीयग्रंथों के काल निर्धारण के संबंध में डॉ. पी.वी. काणे का मत है कि धर्म–संबंधी निबंधों तथा नियमपरक धर्मशास्त्र संबंधी ग्रंथों का प्रणयन कब से आरंभ हुआ? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न, है किंतु इसका कोई निश्चित उत्तर दे देना संभव नहीं है। उनका कथन है कि निरुक्त (3.4.5)से प्रकट होता है कि यास्क (800–500 ई0पूर्व) के बहुत पहले रिक्थाधिकार के प्रश्नों को लेकर गरमा–गरम वाद विवाद उठ खड़े हुए

थे। यथा– पुत्रों तथा पुत्रियों का रिक्थ–निषेध तथा पुत्री का अधिकार हो सकता है कि रिक्थाधिकार (वसीयत) संबंधी इस प्रकार के वाद–विवाद कालांतर में लिपिबद्ध हो गए हों । वसीयत संबंधी वार्ता की ओर यास्क ने जिस प्रकार से संकेत किया है, उससे झलकता है कि उन्होंने कुछ ग्रंथों की ओर निर्देश किया है, जिनमें वैदिक वचनों के उद्धरण दिए गए थे– **अथैतां जाम्या रिक्थप्रतिषेध उदाहरन्ति ज्येष्ठं पुत्रिकाया इत्येके**। डॉ. काणे महोदय कहते हैं, एक महत्वपूर्ण बात यह है कि वसीयत के विषय में यास्क ने एक पद्य का उद्धरण दिया है, जिसे वे ऋचा न कहकर श्लोक कहते हैं–

तदेतदृक्श्लोकाभ्यामभ्युक्तम् ।
अगांदगांत्सम्भवसि ..... स जीव शरदः शतम् ।
अविशेषेण पुत्राणां दायो भवति धर्मतः।

मिथुनानां विसर्गादौ मनुः स्वयाम्भुवोऽब्रवीत् ।। (धर्मशास्त्र का इतिहास– भाग–1, डॉ. पी.वी. काणे, पृ.–8)

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि धर्म–संबंधी ग्रंथ श्लोक–छंद में या श्लोकों में प्रणीत थे। उन्होंने उल्लेख किया है कि वुहलर ने अपने ग्रंथ– सैक्रेड बुक ऑफ द ईस्ट– भूमिका भाग में कहा है कि पद्य–बद्ध बातें स्मृतिशील थी, जो जनता की स्मृति में यों ही बहती आती थी। यदि धर्म संबंधी विषयों के ग्रंथ यास्क से पूर्व विद्यमान थे तो धर्म शास्त्रीय ग्रंथों की तिथि बहुत प्राचीन मानी जाएगी। इस विषय में अन्य प्रमाण भी हैं। गौतम, बौधायन तथा आपस्तंब के धर्मसूत्र निश्चित रूप से ईसा पूर्व 600 और 300 के बीच के हैं। गौतम ने धर्मशास्त्रों की चर्चा की है। बौधायन (4.5.9) ने भी धर्मशास्त्र शब्द का प्रयोग किया है– बौधायन ने धर्म– पाठकों की चर्चा की है (1.1.9) । गौतम ने बहुत से धर्मशास्त्रों के शब्द **इत्येके** कहकर उद्धृत किए हैं । यथा–2.15, 2.58, 3.1, 4.21, 7.23)। उन्होंने मनु की ओर एक बार तथा आचार्यों की ओर कई बार (3.36, 4. 18 एवं 23) संकेत किया है। बौधायन ने औपजंघनि, कात्य, काश्यप, गौतम, मौद्गल्य तथा हरित नामक धर्म शास्त्रों के नाम गिनाए हैं। आपस्तम्ब ने भी एक, कण्व, कौत्स, हारित आदि ऋषियों के नाम लिए हैं। एक वार्तिक भी है जिसमें धर्मशास्त्र की चर्चा है–**धर्मशास्त्रं च** तथा (महाभाष्य) धर्मशास्त्र में लिखित शूद्र– कर्तव्य की ओर जैमिनी ने संकेत किया है–**शूद्रश्च धर्मशास्त्रत्वात्।** (पूर्वमीमांसा सूत्र–6.7.6) पतंजलि ने लिखा है कि उनके समय में धर्मसूत्र थे और उनके प्रमाण भगवान् की आज्ञा के बाद महत्वपूर्ण माने जाते थे –**नैवेश्वर आज्ञापयति नैव सूत्रकाराः पठन्ति, अपवादैरुत्सर्गा बाध्यन्तामिति।** (महाभाष्य) उपर्युक्त विवेचना के आधार पर डॉ. काणे ने सिद्ध किया है कि धर्मशास्त्र यास्क पूर्व उपस्थित थे। कम से कम ईसा पूर्व 600–300 के पूर्व तो वे थे ही और ईसा पूर्व की द्वितीय शताब्दी में वे मानव–आचार के लिए सबसे बड़े प्रमाण माने जाते थे।

1.2.3 धर्मशास्त्रीय ग्रंथों में वर्णित सामाजिक संस्थानों की भूमिका–

धर्मशास्त्रों में वर्णित वर्णाश्रमादिक जो संस्थान हैं, उन सब की मानव–जीवन को संस्कारित करने तथा धर्म (कर्तव्य) के पथ पर चलाने में महत्वपूर्ण भूमिका है। प्रत्येक सामाजिक संस्थानों के अपने–अपने श्रुति, स्मृति एवं पुराणादि में प्रतिपादित नियम हैं। उनका प्रतिपादन प्रत्येक संस्थान मानवमात्र के कल्याणार्थ करता है। कण्वस्मृति में कहा गया है–

श्रुतिस्मृत्युदितं कर्म विहितं वैदिकस्य यत् ।
तदुवे, नैव मार्गेण कर्त्तव्यं नान्यथा चरेत् ।।

अर्थात् श्रुति– स्मृति में जो कर्म बतलाए गए हैं, वह समस्त वैदिक कर्म वेद विहित कर्म हैं। कर्तव्य कर्मों का ही संपादन करना चाहिए। अन्य किसी (मनमाने) मार्ग से नहीं चलना चाहिए। पद्मपुराण में भी कहा गया है–

श्रुतिस्मृतिसदाचारविहितं कर्म केवलम् ।
सेवितव्यं चतुर्वर्णेभजद्भिः केशवं सदा ।
श्रुतिस्मृतिसदाचारविहितं कर्म शाश्वतम् ।।(पद्मपुराण–उत्तरखण्ड– अ.–17)

अर्थात् जो श्रुति– स्मृति में विहित कर्म है तथा भगवान् श्री कृष्ण का भजन चारों वर्णों के लोगों को करना चाहिए, क्योंकि उनमें बतलाए गए कर्म ही शाश्वत हैं। महाभारत के वनपर्व में कहा गया है–

तदिदं वेदवचनं कुरु कर्म त्यजेति च ।
तस्माद् धर्मानिमान् सर्वान् नाभिमानात् समाचरेत् ।।

इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं क्षमा दमः ।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः।। (श्रीमहाभारत–वनपर्व– 2/74–75)

अर्थात् वेद की यह आज्ञा है कि कर्म करो और कर्म छोड़ो (कर्म में लिप्त न हो) , अतः जो धर्म (कर्तव्य) बतलाए गए हैं, उन सभी धर्मों का अहंकार शून्य होकर अनुष्ठान करना चाहिए। यज्ञ, अध्ययन, दान, तप, सत्य, क्षमा, मन और इंद्रियों का संयम तथा लोभ का परित्याग–यह धर्म के 8 मार्ग हैं। अतः धर्म शास्त्रीय ग्रंथों में वर्णित समस्त सामाजिक संस्थानों की मानव जीवन को सफल बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका है। समस्त सामाजिक संस्थान धर्म के इन्हें अष्टविध तथा अन्य और भी जो धर्म बतलाए गए हैं, उन पर ही चलकर मानव जीवन को सफल करने का निर्देश करते हैं। इन मार्गों पर चलने की अनंत महिमा है। जैसा कि महाभारत में कहा गया–

एवंकर्माणि कुर्वन्ति संसारविजिगीषवः ।
रागद्वेषविनिर्मुक्ता ऐश्वर्यं देवता गताः ।। (श्रीमहाभारत–वनपर्व– 2/80)

अर्थात् संसार को जीतने की इच्छा वाले बुद्धिमान पुरुष इसी प्रकार राग–द्वेष से मुक्त होकर कर्म करते हैं। इन्हीं नियमों का पालन करके देवता लोग ऐश्वर्य को प्राप्त हुए हैं।

5.3 धर्मशास्त्रीय ग्रंथों में प्रतिपादित सामाजिक संस्थान

5.3.1 वर्ण संस्थान

भारतीय समाज को योजनाबद्ध तरीके से अग्रसरित और विकसित करने में वर्ण व्यवस्था वर्णसंस्था का अत्यधिक महत्व है। आचार्य यास्क ने अपने ग्रंथ निरुक्त में कहां है – **वर्णो वृणोतेः।।** (निरुक्त –3.2) अर्थात वर्ण का अर्थ है– चयन करना। उन्होंने वर्ण की व्युत्पत्ति 'वृञ्' धातु से मानी है। ऋग्वेद (1.16.96, 2.12.4) में वर्ण शब्द रंग अथवा जनसमूह के अर्थ में प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है। वर्ण शब्द किन किन अर्थों में प्रयुक्त हुआ है? इसका उल्लेख वामन शिवराम आप्टे ने अपने संस्कृत हिंदी कोष के पृष्ठ 902 पर किया है। यहां पर वर्ण शब्द का रंग, रूप, सौन्दर्य, मनुष्य श्रेणी, कबीला,

जाति, श्रेणी, वंश तथा जनजाति अर्थ बतलाया गया है । वैदिक कालीन समाज मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित था – (i) आर्य एवं (ii) अनार्य । आर्य लोगों का व्यवसाय कृषि एवं पशुपालन था तथा अनार्यों को दस्यु कहा गया है– ऋग्वेद– 8.56. 3, 7.21.5 और 10.99.3।

ऋग्वैदिक काल के पश्चात् जब समाज की आवश्यकताओं का विस्तार हुआ, तब समाज का विभाजन मनुष्यों के कर्मों के अनुसार हुआ। जैसा कि ऋग्वेद में कहा गया है –

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।
उरु तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत ।।(ऋ. 10.90.12)

वाल्मीकि रामायण में जटायु ने भगवान् श्रीराम को सकल जीव–जगत की सृष्टि का परिचय देते हुए कहा है –

मनुर्मनुष्याञ्जनयत् कश्यपस्य महात्मनः ।
ब्राह्मणान् क्षत्रियान् वैश्याञ्शूद्रांश्च मनुजर्षभः ।।

मुखतो ब्रह्मणा जाता उरसः क्षत्रियास्तथा ।
ऊरुभ्यां जज्ञिरे वैश्याः पद्भ्यां शूद्रा इति श्रुतिः ।। (रामायण–3.14.29–3)

अर्थात् हे नरश्रेष्ठ (श्री राम)! महात्मा कश्यप की पत्नी मनु ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र जाति वाले मनुष्यों को जन्म दिया। उनमें मुख से ब्राह्मण, हृदय से क्षत्रिय उत्पन्न हुए। दोनों ऊरूओं से वैश्यों तथा दोनों पैरों से शूद्रों का जन्म हुआ, ऐसी प्रसिद्धि है। इन चारों वर्णों का प्रयोजन समाज कल्याण है। लोक कल्याण के लिए यह चारों वर्ण अपने–अपने गुणों और कर्म से समाज का कल्याण करते हैं। जैसा कि भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में श्री अर्जुन को समझाते हुए कहा है–

चातुवर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।
तस्य कर्तारमपि मांविद्ध्यकर्तारमव्ययम् ।। (श्रीमद्भगवद्गीता–4.13)

अर्थात ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों का नाम चातुवर्ण्य कहा गया है। सत्व, रजस और तमम इन तीनों गुणों के विभाजन से तथा कर्मों के विभाजन से यह चारों वर्णों मुझ ईश्वर द्वारा रचे हुए उत्पन्न किए हुए हैं। यद्यपि मायिक व्यवहार से मैं उस कर्म का करता हूं, तो भी वास्तव में मुझे तू अकर्त्ता ही जान और मुझे अव्यय और असंसारी ही समझ।

समस्त मनुष्यों का कर्म और स्वभाव ही वर्ण विभाजन का आधार है। जैसा कि श्रीमद्भगवद्गीता के 18वें अध्याय में जी श्री अर्जुन को समझाते हुए भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं–

ब्राह्मणक्षत्रियविषां शूद्राणां च परन्तप ।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैगुणैः ।। (श्रीमद्भगवद्गीता–4.13)

अर्थात् हे परंतप (अर्जुन)! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के कर्म स्वभाव से उत्पन्न गुणों द्वारा विभक्त किए गए हैं । गुण–कर्म से वर्ण विभाजन का समर्थन शुक्राचार्य ने भी किया है । उनका कथन बहुत ही विचारणीय है और समादरणीय है–

न ब्राह्मणष्वात्र क्षत्रियो वैष्य एव न ।
न शूद्रो न च वै म्लेच्छो भेदिता गुणकर्मभिः ।।

ब्रह्मणस्तु समुत्पन्नाः सर्वे ते किन्न ब्राह्मणः ।
न वर्णितो न जनकाद् ब्रह्मतेज प्रपद्यते ।।

अर्थात् जाति से कोई भी मनुष्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा मलेच्छ (अधम) नहीं होता है। अपितु उसमें उसके गुण और कर्म भेदक होते हैं। समस्त मनुष्य ब्रह्म से समुत्पन्न हैं, इसलिए सब ब्राह्मण क्यों नहीं हैं? न तो वर्ण से और न ही पितृसत्तात्मकता से कोई कुछ (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र) हो सकता है, क्योंकि सब में ब्रह्मतेज ही प्रतिभाषित हो रहा है। इस प्रकार संस्कृत वाङ्मय में वर्ण संस्थान के विषय में बहुविध विमर्श प्राप्त होता है। परंतु निष्कषर्तः यह प्रमाणिक रूप से कहा जा सकता है कि समस्त वर्ण परमात्मा की संतान हैं। गुण और कर्म के विभाजन से इस संसार में समस्त मनुष्य जन्म प्राप्त कर अपने–अपने कर्म का भोग तद्–तद् वर्णो में करते हैं। वर्तमान समय में भी यह वर्ण व्यवस्था विद्यमान है। इसी वर्ण व्यवस्था के कारण ही लोक अग्रसरित हो रहा है। परन्तु लोक अपने–अपने कर्माभिमान नहीं अपितु जात्याभिमान के कारण अपने–अपने को श्रेष्ठ बतलाने का प्रयत्न कर रहा है, जो कि असत्य है। सत्य भगवान् श्रीकृष्ण के वचन चातुवर्ण्यं मया सृष्टं गुण कर्मविभागशः तथा आचार्य शुक्र के हैं जो पहले कहे जा चुके हैं। अतः समग्र लोक को किन्हीं भी भ्रान्तियों में न पड़कर इन्हीं का अनुसरण करना चाहिए।

5.3.2 आश्रम संस्थान

धर्मशास्त्रीय ग्रंथों में चार प्रकार के आश्रमों का उल्लेख मिलता है । आपस्तम्ब धर्मसूत्र (2/9/21/1) के अनुसार चार आश्रमों का उल्लेख किया गया है – गार्हस्थ्य, गुरुगेह (आचार्य कुल) में रहना, मुनि रूप में रहना तथा वानप्रस्थ्य (वन में रहना) । गौतम (312) के अनुसार भी आश्रम चार हैं – ब्रह्मचारी, गृहस्थ, भिक्षु तथा वैखानस । वसिष्ठधर्मसूत्र (7/1–2) में भी चार आश्रम बतलाये गये हैं– ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और परिव्राजक । बौधायन धर्मसूत्र (2/6/17) में भी वसिष्ठ धर्मसूत्र के अनुरूप ही चार आश्रमों का कथन है ।

आश्रम संस्था के महत्व का वर्णन करते हुए विष्णुपुराण में मुनि पराशर ने मैत्रेय मुनि से कहा है–

संसिद्धायां तु वार्तायां प्रजा सृश्टा प्रजापतिः ।
मर्यादां स्थापयामास यथास्थानं यथागुणम् ।।
वर्णानामाश्रमाणां च धर्मान्धर्मभृतां वर ।
लोकांष्च सर्ववर्णानां सम्यग्धर्मानुपालिनाम्।। (विष्णुपुराण–1.6.32–33)

अर्थात् हे धर्मवानों में श्रेष्ठ मैत्रेय! इस प्रकार कृषि आदि जीविका के साधनों के निश्चित हो जाने पर प्रजापति ब्रह्मा जी ने प्रजा की रचना कर उनके स्थान और गुणों के अनुसार मर्यादा, वर्ण और आश्रमों के धर्म तथा अपने धर्म का भली प्रकार पालन करने वाले समस्त वर्णों के लोक आदि की स्थापना की । इस प्रकार चारों आश्रमों में धर्म मर्यादा का पालन करता हुआ मनुष्य पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्मार्थकाममोक्ष) की प्राप्ति करता है । महाभारत में शुकदेव मुनि के आश्रम सम्बन्धी प्रश्न का उत्तर देते हुए महर्षि वेदव्यास ने कहा है–

ब्रह्मचारी गृहस्थष्च वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः।
यथोक्तचारिणः सर्वे गच्छन्ति परमां गतिं ।। (महाभारत–शान्तिपर्व–242/13)

अर्थात् ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यासी ये सभी अपने–अपने आश्रमों के लिए शास्त्रोक्त कर्मों का पालन करते हुए परमगति को प्राप्त करते हैं । अग्रिम पद्य में पुनः महर्षि वेदव्यास ने इन आश्रमों को ब्रह्म की प्राप्ति का सोपान (सीढ़ी) बतलाते हुए कहा है–

चतुश्पदी हि निःश्रेणी ब्रह्मण्येशा प्रतिश्ठिता।
एतामारुह्य निःश्रेणीं ब्रह्मलोके महीयते।। (महाभारत–शान्तिपर्व–242/15)

अर्थात् ये चारों आश्रम ब्रह्म में ही प्रतिष्ठित हैं और ब्रह्म चार पैंडी वाली सीढ़ी के समान माने गए हैं। इस सीढ़ी पर चढ़कर मनुष्य ब्रह्मलोक में सम्मानित होता है।

i) **ब्रह्मचर्याश्रम**– इस आश्रम के अंतर्गत ब्रह्मचारी (शिष्य) गुरुकुल में रहकर वेद–वेदांग का अध्ययन कर शिक्षा प्राप्त करता था। विष्णुपुराण में कहा गया है–

बालः कृतोपनयनो वेदाहरणतत्परः।
गुरुगेहे वसेद्भूप ब्रह्मचारी समाहितः ।। (विष्णुपुराण–3.9.1)

अर्थात् इस आश्रम में बालक को चाहिए कि उपनयन संस्कार के अनंतर वेदाध्ययन में तत्पर होकर ब्रह्मचर्य का अवलंबन करते हुए सावधानीपूर्वक गृह में निवास करे । ब्रह्मचर्याश्रम के पालन के विविध नियम और अनुशासन हैं । इस आश्रम में इनका पालन अनिवार्य बतलाया गया है । महाभारत के शांतिपर्व के अंतर्गत भृगु, भरद्वाज ऋषि संवाद के प्रकरण में भरद्वाज ऋषि के ब्रह्मचर्याश्रम संबंधी प्रश्न का उत्तर देते हुए महात्मा भृगु ने कहा है–

पूर्वमेव भगवता ब्रह्मणा
लोकेहितमनुनिश्ठतधर्मसंरक्षार्थमाश्रमाष्चत्वारोऽभिर्निर्दिश्टाः। तत्र गुरुकुल
वासमेवप्रथममाश्रममुदाहरन्ति। सम्यग यत्र .....
गुरुप्रसादलब्धस्वाध्यायतत्परः स्यात् ।। (महाभारत–शान्तिपर्व–191.8)

अर्थात् मुने ! जगत का कल्याण करने वाले भगवान् ब्रह्मा ने पूर्व काल में ही धर्म की रक्षा के लिए चार आश्रमों का निर्देश किया था। उनमें ब्रह्मचर्य पालनपूर्वक गुरुकुलवास को ही प्रथम आश्रम कहते है । उसमें रहने वाले ब्रह्मचारी को बाहर–भीतर की शुद्धि, बौद्धिक संस्कार तथा व्रत नियमों का पालन करते हुए अपने मन को वश में रखना चाहिए। सुबह और शाम दोनों संध्यायों के समय संध्योपासना, सूर्योपस्थान और अग्निहोत्र के द्वारा अग्नि देव की आराधना करनी चाहिए । तंद्रा और आलस्य को त्याग कर प्रतिदिन गुरु को प्रणाम करे और वेदों के अभ्यास तथा श्रवण से अपनी अंतरात्मा को पवित्र करे। ब्रह्मचर्य का पालन, अग्नि की उपासना और गुरु की सेवा करे। प्रतिदिन भिक्षा मांगकर लाए। भिक्षा में जो कुछ प्राप्त हो, वह सब गुरु को अर्पण कर दे। अपनी अंतरात्मा को भी गुरु के चरणों में निछावर कर दे। गुरुजी जो कुछ कहें, जिसके लिए संकेत करें और जिस कार्य के निमित्त स्पष्ट शब्दों में आज्ञा दें, उसके विपरीत आचरण ना करे। गुरु की कृपाप्रसाद से मिले हुए स्वाध्याय में तत्पर होवे। इस प्रकार धर्म शास्त्रीय ग्रंथों में ब्रह्मचर्याश्रम के स्वरूप का कथन किया गया है।

ii) गार्हस्थ्य आश्रम–ब्रह्मचर्याश्रम के पश्चात् दूसरा क्रम गृहस्थ आश्रम का है। गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने वाले को गृहस्थ या गृहपति के रूप में जाना जाता है। गृहस्थाश्रम के प्रवेश के अवसर पर यज्ञादिक धार्मिक संस्कार संपन्न करवाने की भारतीय परंपरा रही है। महाभारत के शांतिपर्व के अंतर्गत भरद्वाज ऋषि से महात्मा भृगु जी गृहस्थाश्रम के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहते हैं–

गार्हस्थ्यं खलु द्वितीयमाश्रमं वदन्ति । तस्य समुदाचार लक्षणं सर्वमनुव्याख्यास्यामः। समावृत्तानां सदाचाराणां सहधर्मचर्यफलार्थिना गृहाश्रमो विधीयते। धर्मार्थकामावाप्तिर्ह्यत्र त्रिवर्गसाधनमयेक्ष्यागार्हितेन कर्मणा.....भिक्षाबलिसंविभागाः प्रवर्तन्ते।। (महाभारत शान्तिपर्व–191/10)

अर्थात् गार्हस्थ्य को दूसरा आश्रम कहते हैं। भृगु जी कहते हैं कि मैं अब इस आश्रम में पालन करने योग्य समस्त आचरणों की व्याख्या करूंगा। जो सदाचार का पालन करने वाले ब्रह्मचारी विद्या अध्ययन कर गुरुकुल से स्नातक होकर लौटते हैं, उन्हें यदि सहधर्मिणी के साथ रहकर धर्म का आचरण करने और उसका फल पाने की इच्छा हो तो उनके लिए गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने की विधि है । इस आश्रम में धर्म, अर्थ और काम तीनों की प्राप्ति होती है । इसलिए त्रिवर्ग साधन की इच्छा रख कर गृहस्थ को उत्तम कर्म के द्वारा धन संग्रह करना चाहिए अर्थात वह स्वाध्याय से प्राप्त हुई विशिष्ट योग्यता से ब्रह्मर्षियों द्वारा धर्मशास्त्र में निश्चित किए हुए मार्ग अथवा पर्वत से उपलब्ध हुए उसके साथ भूत मणिरत्न, दिव्य औषधि एवं स्वर्ण आदि से धन का संचय करें अथवा हव्य (यज्ञ), कव्य (श्राद्ध), नियम, वेदाभ्यास तथा देवताओं की प्रसन्नता से प्राप्त धन के द्वारा गृहस्थ पुरुष अपनी गृहस्थी का निर्वाह करे, क्योंकि गृहस्थ आश्रम को समस्त आश्रमों का मूल कहते हैं। गुरुकुल में निवास करने वाले ब्रह्मचारी, वन में रहकर संकल्प के अनुसार व्रत, नियम तथा धर्म का पालन करने वाले अन्यान्य वानप्रस्थ एवं सब कुछ त्याग कर सर्वत्र विचरने वाले सन्यासी भी इस गृहस्थाश्रम से ही भिक्षा, भेंट, उपहार तथा दान आदि पाकर अपने–अपने धर्म के पालन में प्रवृत्त होते हैं। इस प्रकार समस्त धर्मशास्त्रीय ग्रंथों में उपरोक्त महाभारत में गृहस्थाश्रम के संबंध में कही गई बातों का ही कथन किया गया है।

iii) वानप्रस्थाश्रम–गृहस्थाश्रम के पश्चात् वानप्रस्थ आश्रम का क्रम आता है। वानप्रस्थ का शाब्दिक अर्थ बतलाते हुए अमरकोश में कहा गया है – वनमेवप्रस्थो, वनस्य वा प्रस्थ प्रदेशः। वन प्रदेश भवः।। (अमरकोश पृ. 251.3) अर्थात् वन प्रदेश में प्रस्थान करना निवास करना। वानप्रस्थ जीवन व्यतीत करने वाले मनुष्य की नियमावली एवं उसके स्वरूप का कथन करते हुए शांतिपर्व में महात्मा भृगु का कथन है–

वानप्रस्थाः खल्वपि धर्ममनुसरन्तः पुण्यानि तीर्थानि ..... धृतिपराः सत्वयोगाच्छरीराण्युद्वहन्ते।।

(शान्तिपर्व–192–1) अर्थात् भरद्वाज मुने! तीसरे आश्रम वानप्रस्थ का पालन करने वाले मनुष्य धर्म का अनुसरण करते हुए पवित्र तीर्थों में, नदियों के किनारे, झरनों के आसपास तथा मृग, भैंसे, सूअर, सिंह एवं जंगली हाथियों से भरे हुए एकांत वनों में तप करते हुए विचरते हैं। गृहस्थों के उपभोग में आने वाले ग्रामजनोचित सुंदर वस्त्र, स्वादिष्ट भोजन और विषयभोगों का परित्याग करके वे जंगल में अपने आप उगने वाले अन्न, फल, मूल तथा पत्तों का परिमित, विचित्र एवं नियत

आहार करते हैं। भूमि पर ही बैठते हैं। जमीन, पत्थर, रेत, कंकरीली मिट्टी, बालू अथवा राख पर सोते हैं। काश (एक प्रकार की घास), कुश, मृगचर्म और वृक्षों की छाल से बने वस्त्रों से अपने शरीर को ढ़कते हैं। सिर के बाल, दाढ़ी, मूंछ, और रोम सदा धारण किए रहते हैं। नियत समय पर स्नान करके, निश्चित काल का उल्लंघन न करते हुए बलि वैश्वदेव तथा अग्निहोत्र आदि कर्मों का अनुष्ठान करते हैं। सुबह हवन–पूजन के लिए समिधा, कुशा और फूल आदि का संग्रह करके, आश्रम को झाड़–बुहार लेने के पश्चात् उन्हें कुछ विश्राम मिलता है। सर्दी, गर्मी, वर्षा और हवा का वेग सहते–सहते उनके शरीर के चमड़े फट जाते हैं। नाना प्रकार के नियमों का पालन और सत्कर्मों का अनुष्ठान करते रहने से उनके रक्त और मांस सूख जाते हैं और शरीर की जगह चाम से ढकी हुई हड्डियों का ढांचा मात्र रह जाता है, फिर भी धैर्य रखकर साहस पूर्वक शरीर का भार ढोते रहते हैं। वानप्रस्थ आश्रम में अकेले ही प्रवेश करना चाहिए अथवा सपत्नीक, इस विषय में महाभारत के शांतिपर्व में कहा गया है–

सदारो वाप्यदारो वा आत्मवान् संयतेन्द्रियः।
वानप्रस्थाश्रम गच्छेत् कृतकृत्यो गृहाश्रमात्।।

अर्थात् आत्मवान, इंद्रियों को संयमित रखने वाला, गृहस्थ आश्रम से कृतकृत्य व्यक्ति स्वयं अथवा अपनी पत्नी के साथ वानप्रस्थ आश्रम में जाता है। वानप्रस्थ के इन नियमों का पालन करने वाले को इसका क्या फल मिलता है? इस विषय में महात्मा वेदव्यास का कथन है–

यस्त्वेतां नियतष्चर्यां ब्रह्मर्शिविहितां चरेत् स दहेदग्निवद्दोशान्
जयेल्लोकांष्च दुर्जयान् ।।(शान्तिपर्व–192–2)

अर्थात् जो पुरुष नियम के साथ रहकर ब्रह्मर्षियों द्वारा आचरण में लाई हुई इस वानप्रस्थ धर्म की विधि का अनुष्ठान करता है, वह अग्नि की भांति अपने दोषों को भस्म कर के दुर्लभ लोक को प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार अन्य धर्मशास्त्रीय ग्रंथों में भी वानप्रस्थ धर्म के व्रत–पालन का वर्णन किया गया है।

iv) संन्यास आश्रम – वानप्रस्थ के पश्चात क्रमशः संन्यास आश्रम का क्रम आता है। मनुष्य अपने जीवन के अंतिम चतुर्थांश भाग को सन्यास आश्रम में व्यतीत करता है । मनुस्मृति में कहा गया है–

वनेशु च विहृत्यैवं तृतीयं भागमायुशः।
चतुर्थमायुशो भागं त्यक्त्वा संगान्परिव्रजेत् ।।(मनुस्मृति–6.33)

अर्थात् अपनी आयु के तीसरे भाग को मनुष्य वनों में विहार करके और आयु के चतुर्थ भाग को विषयों से त्याग कर सन्यास आश्रम का ग्रहण करके व्यतीत करें। सन्यास आश्रम के स्वरूप का वर्णन करते हुए महाभारत के शांति पर्व में महात्मा भृगु का कथन है–

परिव्राजकानां पुनराचारः – तद्यथा विमुच्याग्निधनकलत्र परिवर्हणं
संगेश्वात्मनः स्नेहपाषानवधूय परिव्रजन्ति।.....
कामकोधमोहकापर्ण्यदम्भपरिवादाभिमानहिंसानिवृत्ता इति ।।
(शान्तिपर्व–192–3)

अर्थात् संन्यास आश्रम में प्रवेश करने वाले पुरुष अग्निहोत्र, धन, स्त्री आदि परिवार तथा घर की सारी सामग्री का परित्याग करके और सगे–सम्बन्धियों के प्रति अपनी आसक्ति के बंधन को तोडकर सदा के लिए घर से बाहर निकल जाते हैं ढ़ेले, पत्थर और सुवर्ण को समान समझते हैं। धर्म, अर्थ और काम संबंधी प्रवृत्तियों में उनकी बुद्धि आसक्त नहीं होती। शत्रु, मित्र और उदासीन सबके प्रति समान दृष्टि रखते हैं। स्थावर, पिण्डज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज प्राणियों के प्रति मन, वाणी और क्रियाओं के द्वारा कभी द्रोह नहीं करते हैं । कुटी या मठ बनाकर नहीं रहते हैं। उन्हें चाहिए की वे चारों और विचरते रहें तथा रात्रि में ठहरने के लिए पर्वत की गुफा, नदी का किनारा, वृक्ष की जड, देव मंदिर, नगर अथवा गांव में चले जाया करें । नगर में पांच–रात्रि तथा गांव में एक रात से अधिक न ठहरें। प्राणधारण के लिए अपने विशुद्ध धर्मों का पालन करने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन द्विजातियों के ऐसे घरों पर जाकर खडे हो जाएं, जहां संकीर्णता न हो। बिना मांगे ही पात्र में जितनी भिक्षा आ जाय, उतनी ही स्वीकार करें। काम, क्रोध, दर्प, लोभ, मोह, कृपणता, दंभ, निंदा, अभिमान तथा हिंसा से सर्वथा दूर रहें। इस प्रकार धर्म शास्त्रीय ग्रंथों में संन्यास आश्रम में जीवन व्यतीत करने की विधि का विवेचन किया गया है।

5.3.3 यज्ञ संस्थान

भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति धर्म एवं अध्यात्म का अत्यधिक महत्व है। धर्म के तीन साधनों के रूप में ज्ञान, कर्म एवं भक्ति का कथन किया गया। यज्ञ में तीनों का समन्वय बतलाया गया है। जैसा कि कालिकापुराण में कहा गया है – सर्वं यज्ञमयं जगत् ।। (कालिकापुराण–31.40) महर्षि वसिष्ठ का कथन है–

यज्ञात्सृश्टिः प्रजायन्ते अन्नानि विविधानि च।
तृणान्यौशधान्यथ च फलानि विविधानि च।
जीवानां जीवनार्थाय यज्ञः संकियतां बुधैः।।

अर्थात् यज्ञ से सृष्टि उत्पन्न होती है तथा विविध प्रकार के अन्न यज्ञ से ही उत्पन्न होते हैं । विभिन्न प्रकार के तृण, औषधियां तथा फल भी यज्ञ से ही उत्पन्न होते हैं। लोक में जीवन यापन के लिए विद्वज्जन यज्ञ को संपादित किया करते हैं। प्राचीन काल के ऋषि, महर्षियों, राजर्षियों तथा राजा–महाराजाओं ने यज्ञ की उपासना द्वारा अतुल शक्ति प्राप्त करके अपने–अपने इष्ट की सिद्धि प्राप्त की थी। देवताओं ने यज्ञ के द्वारा देवत्व पद तथा इंद्रदेव ने सौरूप करके देवराज पद की प्राप्ति की थी । महाराजा दशरथ तथा अन्य अनेक राजाओं ने यज्ञ करके पुत्र एवं पुत्री की प्राप्ति की थी। महाराजा दिलीप के 99 यज्ञों से प्रसन्न होकर देवराज इंद्र ने 100 यज्ञों के करने का समस्त फल उन्हें वरदान स्वरूप प्रदान कर दिया था। (द्रष्टव्य–भारतीय संस्कृति– डॉ0 दीपक कुमार, पृष्ठ–406)

वेदों में विविध प्रकार के यज्ञों का विधान बताया गया है परन्तु पांच प्रकार के यज्ञ मुख्य रूप से बतलाए गए हैं – अग्निहोत्र, दशपूर्णमास, चातुर्मास, पशुयाग और सोमयाग। इन यज्ञों के बहुविध अवांतर भेद भी हुआ करते हैं। गौतम धर्म सूत्र में विविध प्रकार के यागों का यज्ञ की 3 प्रमुख संस्थाओं–हविर्यज्ञ संस्था, सोमयाज्ञ संस्था तथा पाकयज्ञ संस्था में समाहार बतलाया गया है । इनमें पाकयज्ञ को पञ्चमहायज्ञ के नाम से भी जाना जाता है । प्रत्येक गृहस्थ यदि इस यज्ञ को प्रतिदिन करता है तो निश्चयेन धर्मशास्त्रीय ग्रंथों के कथनानुसार उसका इहलोक और परलोक दोनों सिद्ध हो जाता है।

पञ्च महायज्ञ – भारतीय ज्ञान परम्परा में पञ्च महायज्ञों का सर्वाधिक महत्व है। पंच महायज्ञ क्रमशः हैं– (i) ब्रह्मयज्ञ, (ii) देवयज्ञ, (iii) पितृयज्ञ, (iv) नृयज्ञ अतिथि यज्ञ और (v) बलिवैश्वदेव यज्ञ । महाभारत के वैष्णवधर्म पर्व में महाराज युधिष्ठिर के पंच महायज्ञ संबंधी प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है–

ऋभुयज्ञं ब्रह्मयज्ञं भूतयज्ञं च पाण्डव ।
नृयज्ञं पितृयज्ञं च पंचयज्ञान् प्रचक्षते ।। (वैष्णवधर्मपर्व–अ.92)

अर्थात् पाण्डुनंदन! ऋभुयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, भूतयज्ञ, मनुष्ययज्ञ और पितृयज्ञ– ये पंचयज्ञ कहलाते हैं । इनमें–

तर्पणं ऋभुयज्ञः स्यात् स्वाध्यायो ब्रह्मयाजकः ।
भूतयज्ञो बलिर्यज्ञो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ।
पितृनुद्दिष्य यत् कर्म पितृयज्ञः प्रकीर्तितः ।। (तत्रैव)

अर्थात् तर्पण को ऋभुयज्ञ कहते हैं । ब्रह्मयज्ञ स्वाध्याय का नाम है । समस्त प्राणियों के लिए अन्न की बलि देना भूत यज्ञ है। अतिथियों की पूजा को मनुष्य यज्ञ कहते हैं तथा पितरों के उद्देश्य से जो श्राद्ध आदि कर्म किए जाते हैं, उन्हें पितृयज्ञ कहा जाता है। (आश्वलायनगृह्यसूत्र–3/1/1–4), (आपस्तम्ब धर्मसूत्र–1/4), 12/13–15 तथा 1/4/13/1), गौतम–(5/8 तथा 8/17), बौधायन धर्मसूत्र (2/6/1–8), गोभिलस्मृति (2/16) तथा अन्य धर्मशास्त्रीय ग्रंथों में भी पंच महायज्ञ के विधि–विधान और महत्व की चर्चा की गई है। इन पंच महायज्ञ का उद्देश्य मानव जीवन का इहलोक और परलोक मंगलकारी बनाना है। जैसा कि महाभारत के वैष्णवधर्मपर्व में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है–

शृणु पंच महायज्ञान् कीर्त्यमानान् युधिश्ठिर ।
यैरेव ब्रह्मसालोक्यं लभ्यते गृहमेधिना ।।

अर्थात् हे कीर्तिमान् युधिष्ठिर ! इन पंचमहायज्ञों के अनुष्ठान से गृहस्थों को ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है ।

5.3.4 संस्कार संस्थान

संस्कारों का लौकिक और पारलौकिक दोनों स्तरों पर अत्यंत महत्व है। संस्कारों द्वारा मानव जीवन का परिष्कार, व्यक्तित्व का विकास, दैनिक पवित्रता एवं भौतिक तथा आध्यात्मिक स्तर का विकास होता है। मनुस्मृति में कहा गया है–

वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निशेकादिद्विजन्मनाम् ।
कार्यः षरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च ।।

गार्भैहोमैर्जातकर्म चौडमौञ्जीनिबन्धनैः ।
वैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते ।।

स्वाध्यायेन ब्रतैर्होमैस्त्रेविद्येनेज्यया सुतैः ।
महायज्ञैष्च यज्ञैष्च ब्रह्मीयं कियते तनुः ।। (मनुस्मृति–2.26–28)

अर्थात समस्त द्विजातियों के इस और परलोक में पवित्र करने वाले गर्भाधान आदि शरीर संस्कार, वेदोक्त पवित्र मंत्रों की विधि से करने चाहिए। गर्भशुद्ध करने वाले

हवनों से और जात–कर्म, मुण्डन और यज्ञोपवीत इन संस्कारों से द्विजातियों के गर्भ और बीज का दोष मिट जाता है। वेद के पढ़ने से, व्रतों से, हवनों से, त्रैविद्य नाम व्रत से, देव–ऋषि–पितृ–तर्पण से, पुत्रों से, महायज्ञ और यज्ञों से यह शरीर मोक्ष पाने की योग्य हो जाता है।

संस्कारों के संख्या के विषय में धर्म शास्त्रीय ग्रंथों किंवा स्मृतियों में मतभेद रहा है। गौतम (8.14–24) में 40 संस्कारों का वर्णन मिलता है। वैखानस ने 18 शरीर संस्कारों की गणना की है । व्यास ने (1.14–15) 16 संस्कारों की गणना की है। डॉ. राजबली पाण्डेय ने 16 प्रमुख संस्कारों को अपनी पुस्तक हिंदूसंस्कार में वर्णित किया है। जो हैं– (i) गर्भाधान (ii) पुंसवन (iii) सीमंतोन्नयन (iv) जातकर्म (v) नामकरण, (vi) निष्क्रमण (vii) अन्नप्राशन (viii) चूडाकरण (ix) कर्णवेध (x) विद्यारंभ (xi) उपनयन (xii) वेदारंभ (xiii) केशांत अथवा गोदान संस्कार (xiv) समावर्तन अथवा स्नान (xv)विवाह (xvi) अंत्येष्टि संस्कार । इनमें गर्भाधान, पुंसवन और सीमंतोन्नयन संस्कार प्रागजन्म संस्कार हैं। जात कर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकरण तथा कर्णवेध बाल्यावस्था में संपन्न होने वाले संस्कार हैं। विद्यारंभ, उपनयन, वेदारंभ, केशांत, समावर्तन शैक्षिक संस्कार से संबद्ध हैं। इसके अतिरिक्त विवाह और अंत्येष्टि स्वतंत्र संस्कार हैं। इन संस्कारों के विधि–विधान और नियमावली का विभिन्न धर्म शास्त्रीय ग्रंथों में सविस्तर विवेचन प्राप्त होता है। इनका यहां नाम उल्लेख मात्र किया जा रहा है। इनका प्रयोजन मानव जीवन को सर्वोत्कृष्ट बना कर पुरुषार्थ चतुष्टय की ओर अग्रसर करना है

5.3.5 विवाह संस्थान

वैवाहिक संस्था भारतीय समाज की सबसे महत्वपूर्ण संस्था है। विवाह गृहस्थ जीवन में पदार्पण करने का प्रवेश द्वार है। बिना विवाह के किसी भी धार्मिक कृत्य अथवा सबसे बड़े आश्रम गृहस्थाश्रम का निर्वाह असंभव है। गृहस्थाश्रम समस्त आश्रमों का मूल है और स्त्री (पत्नी) गृहस्थाश्रम का मूल मानी गई है। अपरार्क ने याज्ञवल्क्यस्मृति 1.51 पर किसी अज्ञात लेखक का कथन उद्धृत किया है, जिसे डॉ. राजबली पांडेय ने अपनी पुस्तक हिंदूसंस्कार के पृष्ठ 197 पर उद्धृत किया है, में कहा गया है–

पत्नी धर्मार्थकामानां कारणं प्रवरं स्मृतम्।
अपत्नीको नरो भूप कर्मयोग्यो न जायते।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वैश्यः शूद्रोऽपि वा नरः।।

अर्थात् पत्नी को धर्म अर्थ और काम का प्रधान कारण जानना चाहिए। बिना पत्नी के मनुष्य किसी भी कर्म को करने के योग्य नहीं हो पाता है। चाहे वह चतुर्वर्ण में से किसी भी वर्ण से संबद्ध मनुष्य हो। कन्या–विवाह के संबंध में पात्र विषयक विचार पर महात्मा भीष्म से युधिष्ठिर ने प्रश्न करते हुए कहा–

यन्मूलं सर्वधर्माणां स्वजनस्य गृहस्य च।
पितृदेवातिथीनां च तन्मे ब्रूहि पितामह ।। (अनुशा. पर्व 44.1)

अर्थात् हे पितामह! जो समस्त धर्मों का, कुटुंबी जनों का, घर का तथा देवता, पितर और अतिथियों का मूल है, उस कन्यादान के विषय में मुझे कुछ उपदेश दीजिए। तब उनके प्रश्न का उत्तर देते हुए श्री भीष्म पितामह ने कहा–

अयं हि सर्वधर्माणां धर्मश्चिन्त्यतमो मतः ।
कीदृशस्य प्रदेया स्यात् कन्येति वसुधाधिप ।। (तत्रैव–2)

अर्थात् हे पृथ्वीनाथ! सब धर्मों से बढकर यही चिंतन करने योग्य धर्म माना गया है कि कैसे पात्र को कन्या देनी चाहिए? इसलिए उन्होंने युधिष्ठिर को बतलाया–

षीलवृत्ते समाज्ञाय विद्या योनिं च कर्म च।
सदृभरेव प्रदातव्या कन्या गुणयुते वरे ।। (तत्रैव–2)

अर्थात् सत्पुरुषों को चाहिए कि वे पहले वर के शील–स्वभाव, सदाचार, विद्या, कुल, मर्यादा और कार्यों की जांच करें। फिर यदि वह सभी दृष्टियों से गुणवान् प्रतीत हो तो उसे कन्या प्रदान करें।

धर्मशास्त्रीय ग्रंथों स्मृतियों में प्रायः आठ प्रकार के विवाहों का वर्णन किया गया है, जिनके नाम क्रमशः हैं–(i) ब्राह्म विवाह, (ii) देव विवाह, (iii) आर्ष विवाह, (iv) प्राजापत्य विवाह, (v) गांधर्व विवाह, (vi) आसुर विवाह, (vii) राक्षस विवाह, (viii) पैशाच विवाह। परन्तु महाभारत में पांच प्रकार के विवाहों यथा–(i) ब्राह्म, (ii) प्राजापत्य, (iii) गांधर्व, (iv) आसुर और (ii) राक्षस का वर्णन किया गया है । अतः महाभारत में कथित ब्राह्म विवाह में स्मृति कथित देव और आर्ष का अन्तर भाव समझना चाहिए। इसी प्रकार राक्षस विवाह में पैशाच का अर्न्तभाव समझना चाहिये । इस प्रकार उत्तम वैवाहिक विधि से समाज के प्रत्येक वर्ग के मनुष्य को गृहस्थ आश्रम का निर्वाह करना चाहिए। गृहस्थ आश्रम को सभी आश्रमों में श्रेष्ठ माना गया है । जैसा कि मनुस्मृति का कथन है–

यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः।
तथा गृहस्थमाश्रमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः।। (मनुस्मृति–3.77)

अर्थात् जिस प्रकार समस्त प्राणी वायु का आश्रय लेकर जीवन जीते हैं, उसी प्रकार समस्त आश्रम गृहस्थ आश्रम का आश्रय लेकर अपना निर्वाह करते हैं। गृहस्थाश्रम को धर्मयुक्त व्यतीत करने पर समग्र मनुष्यों के इहलोक और परलोक दोनों सिद्ध हो जाते हैं। अतः धर्म शास्त्रीय ग्रंथों में प्रतिपादित समस्त सामाजिक संस्थानों का प्रयोजन मानवमात्र लोक का कल्याण करना है। इसलिए धर्मशास्त्र को निसंदेह सामाजिक संस्थानों के अध्ययन की विशेष शाखा के रूप में प्रतिष्ठित सत्यापित किया जा सकता है, क्योंकि इनमें वर्ण, आश्रम, संस्कार एवं विवाह ही नहीं अपितु विवाह के अधिकार और कर्तव्य, विवाह विच्छेद, आचार–व्यवहार आदि अन्यान्य और भी विषयों का विधि–विधान पूर्वक विवेचन प्राप्त होता है।

5.4 सारांश

सारांश भारतीय शास्त्रों के इतिहास में संस्कृत वांग्मय में लिखित धर्मशास्त्रीय ग्रंथों की महती परंपरा है। धर्मशास्त्र मानवता के भौतिक एवं आध्यात्मिक जीवन के विधिशास्त्र हैं इन्हीं शास्त्रों का अध्ययन कर मानव अपने जीवन के परम पुरुषार्थ को प्राप्त करता है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। धर्म शास्त्र ग्रंथों में मानव मात्र के कल्याण की कामना करके धर्मशास्त्र के विभिन्न आप्तकाम आचार्यों ने अपने–अपने धर्मशास्त्र का वर्णन किया है। प्रस्तुत इकाई का नाम धर्मशास्त्र सामाजिक संस्थानों की विशेष शाखा के रूप में उपस्थापित किया गया है, जो अत्यंत सारगर्भित और युक्ति–युक्त ही है। इन इकाइयों में नामानुरूप ही उनके वैविध्य की प्रस्तुति का प्रयास किया गया है।

5.5 शब्दावली

1. आनृशंस्य– अहिंसा
2. इज्या–यज्ञ
3. हव्य– यज्ञ
4. कव्य – श्राद्ध
5. चतुष्पदी–सीढ़ी
6. पुरुषार्थचतुष्टय– धर्मार्थकाममोक्ष
7. त्रैविद्य व्रत– ऋक्यजुः साम का ज्ञान
8. कृशान्– दुर्बल
9. ऋभुयज्ञ– तर्पण
10. नृयज्ञ– अतिथिपूजन
11. दारा– पत्नी

5.6 बोध/अभ्यास प्रश्न –

बोध प्रश्न –

1. श्रुति किसे कहते हैं?
2. धर्मशास्त्र किसे कहते हैं?
3. धर्म किसे कहते हैं?
4. पुरुषार्थ कितने हैं?
5. पुरुषाथों के नाम बतलाएं।
6. आश्रम कितने हैं?
7. आश्रमों के नाम बतलाएं।
8. प्रमुख संस्कारों की संख्या कितनी मानी गई है?

अभ्यास प्रश्न –

1. सामाजिक संस्थानों की भूमिका पर निबन्ध लिखिए।
2. पंचमहायज्ञों के महत्व का निरूपण कीजिए।
3. संस्कारों के महत्व पर प्रकाश डालिए।
4 विवाह के प्रकारों का उल्लेख कीजिए।
5. आश्रम संस्थान के महत्व पर प्रकाश डालिए।

5.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. वेद को 2. स्मृति को 3. जो किसी अन्य धर्म का विरोधी न हो 4. चार 5. धर्मार्थकाममोक्ष 6. चार 7. बह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास 8. सोलह।

अभ्यास प्रश्न के उत्तर छात्र स्वयं करें।

5.7 उपयोगी पुस्तकें

- ऋग्वेद का सुबोध भाष्य –डॉ. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, बलसाड – 1985
- महाभारत– भाग– 1–6, गीता प्रेस गोरखपुर, तेरहवां संस्करण, संवत– 2067
- श्रीमद्भगवद्गीता– गीता प्रेस गोरखपुर, पैतींसवाँ –पुनर्मुद्रण–संवत – 2073
- मनुस्मृति– सं., पं. रामेश्वर भट्ट–चौखंबा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली–पुनर्मुद्रण – 2011
- श्री विष्णु पुराण– गीता प्रेस गोरखपुर– अठ्ठावनवाँ पुनर्मुद्रण, संवत –2077
- धर्मशास्त्र का इतिहास– 1–6 भाग– डॉ. पी. वी. काणे –उत्तर प्रदेश, हिंदी संस्थान– 1992
- प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास– डॉ. जयशंकर मिश्र, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना– दशम संस्करण– 2006
- धर्मशास्त्र का बृहद इतिहास– भाग–1– डॉ. दिलीप कुमार नाथाणी– चौखंभा ओरियंटालिया– दिल्ली, संस्करण –2019
- धर्मशास्त्रों का समाज दर्शन– डॉ. गीता रानी अग्रवाल– आदर्श विद्या निकेतन वाराणसी, प्र. स. –1983
- हिंदू संस्कार– डॉ. राजबली पांडेय– चौखंबा विद्याभवन, वाराणसी पुनर्मुद्रित संस्करण– 2006।

इकाई 6 धर्म के स्रोत व विविध प्रकार – (मनुस्मृति 2/12, 6/92, 10/63, याज्ञवल्क्य स्मृति 1/1, 7/3, विष्णु पुराण 2/16–17)

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 धर्म के स्रोत व विविध प्रकार :

- 6.2.1 धर्म का अर्थ
- 6.2.2 धर्म का महत्त्व
- 6.2.3 धर्म के उपादान

6.3 धर्म के स्रोत :

- 6.3.1 श्रुति
- 6.3.2 स्मृति
- 6.3.3 रामायण
- 6.3.4 महाभारत
- 6.3.5 पुराण
- 6.3.6 अर्थशास्त्र

6.4 धर्म के विविध प्रकारः

- 6.4.1 मनुस्मृति
- 6.4.2 याज्ञवल्क्य
- 6.4.3 विष्णुपुराण

6.5 सारांश

6.6 शब्दावली

6.7 बोध/अभ्यास प्रश्न

6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आप–

- धर्म के अर्थ से अवगत हो जाएंगे।
- धर्म के महत्त्व से अवगत हो जाएंगे।
- धर्म के उपादानों से अवगत हो जाएंगे।
- धर्म के विभिन्न स्रोतग्रन्थों से अवगत हो जाएंगे।
- धर्म के विविध प्रकारों से परिचित हो जाएंगे।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

6.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत धर्म के विभिन्न अर्थों को विभिन्न ग्रन्थों एवं शब्दकोश के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। धर्म के अर्थ के साथ–साथ धर्म क्या है? उसके विविध प्रकार कौन–कौन से हैं? इस इकाई के अन्तर्गत बताया गया है। श्रुति, स्मृति, रामायण, महाभारत और पुराण ग्रन्थों को धर्म के स्रोत के रूप में इस इकाई के अन्तर्गत उपस्थापित किया गया है। मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति और विष्णुपुराण तथा महाभारत आदि ग्रन्थों में धर्म की क्या–क्या अवधारणाएं तथा प्रकार बतलाये गए है? प्रस्तुत इकाई के अर्न्तगत इनको भी संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत किया गया है। धर्म कोई सम्प्रदाय विशेष नहीं है, प्रत्युत धर्म मानव जीवन के कल्याणार्थ मानवमात्र द्वारा धारण किया जाने वाला अपनाया जाने वाला एक व्रत है। प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत इस तथ्य को स्थापित किया गया है।

6.2 धर्म के स्रोत व विविध प्रकार

धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में धर्म के विविध पहलुओं पर विचार–विमर्श करते हुए धर्म तत्त्व वेत्ताओं ने धर्म स्रोतग्रन्थों एवं उसके विविध प्रकारों का भी वर्णन किया है।

6.2.1 धर्म का अर्थ

संस्कृत हिंदी कोश के पृष्ठ संख्या 489 पर वामन शिवराम आप्टे ने धर्म शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए लिखा है– 'ध्रियते लोकोऽनेन, धरति लोकं वा'। अर्थात् लोक के द्वारा जो धारण किया जाए अथवा लोग जिस को धारण करता है, वह धर्म है। धर्म शब्द धृ धातु से मन् प्रत्यय करके निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है– धारण करना। इसके अन्य विभिन्न अर्थ भी हैं। यथा– कर्तव्य, जाति, संप्रदाय आदि के प्रचलित आचार का पालन। कानून, प्रचलन, दस्तूर, प्रथा, अध्यादेश, अनुविधि। धार्मिक या नैतिक गुण, भलाई, नेकी तथा अच्छे काम आदि भी धर्म के अर्थ पर्याय के रूप में संस्कृत–हिंदी कोश में बतलाए गए हैं। धर्म का स्वरूप कैसा है ? धर्म किसे कहते है? धर्म की इस जिज्ञासा के विषय में महाराज युधिष्ठर के प्रश्न का उत्तर देते हुए भीष्म पितामह ने कहा है–

प्रभवार्थाय भूतानां धर्म प्रवचनं कृतम्।
यः स्यात् प्रभव संयुक्तः स धर्म इति निश्चयः।।

धारणाद् धर्ममित्याहुधर्मेण विधृताः प्रजाः।
यः स्याद् धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः।। (शान्तिपर्व–109.10–12)

अर्थात् प्राणियों के अभ्युदय और कल्याण के लिए ही धर्म का प्रवचन किया गया है, अतः जो इस उद्देश्य से युक्त हो अर्थात् जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस (मोक्ष या परमानंद) सिद्ध होते हों, वही धर्म है। ऐसा शास्त्रवेत्ताओं का निश्चय है। धर्म का नाम 'धर्म' इसलिए पड़ा है कि वह सबको धारण करता है। धर्म ने ही सारी प्रजा को धारण कर रखा है, अतः जिससे धारण और पोषण सिद्ध होता हो, वही धर्म है, ऐसा धर्मवेत्ताओं का निश्चिय है। प्राणियों की हिंसा न हो, इसके लिए धर्म का उपदेश दिया गया है, अतः जो अहिंसा से युक्त हो, वही धर्म है, ऐसा धर्मात्माओं का निश्चय है। शांतिपर्व के अंतर्गत ही एक विशिष्ट बात धर्म के अर्थ के संबंध में और अत्यधिक जोरदार कही गई है–

येऽन्यायेन जिहीर्षन्तो धनमिच्छन्ति कस्यचित।
तेभ्यस्तु न तदाख्येयं स धर्म इति निश्चयः।।(शान्तिपर्व–109.14)

अर्थात् जो अन्याय से अपहरण करने की इच्छा रख कर किसी धनी के धन का पता लगाना चाहते हों, उन लुटेरों से उसका पता ना बतावे और यही धर्म है, ऐसा निश्चय रखे।

डॉ. पी.वी. काणे ने अपने महत्त्वपूर्ण ग्रंथ धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग–1 के पृष्ठ संख्या 4 पर वेद, उपनिषद् एवं स्मृतियों में वर्णित धर्म के विभिन्न अर्थों का उपस्थापन किया है। अथर्ववेद (9.9.17) का उद्धरण देते हुए उन्होंने लिखा है कि वहां पर धर्म शब्द का प्रयोग 'धार्मिक क्रिया संस्कार करने से अर्जित गुण' के अर्थ में हुआ है। ऐतरेय ब्राह्मण (7.17) में धर्म शब्द सकल धार्मिक कर्तव्यों के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। छांदोग्योपनिषद् (2.23) में धर्म का एक महत्वपूर्ण अर्थ मिलता है, जिसके अनुसार धर्म की तीन शाखाएं मानी गई हैं– (i) यज्ञ, अध्ययन एवं दान अर्थात् गृहस्थ धर्म, (ii) तपस्या अर्थात् तापस धर्म तथा (iii) ब्रह्मचारित्व अर्थात् आचार्य के गृह में अंत तक रहना। वैशेषिक सूत्रकार का कथन है–**अथातो धर्म व्याख्यास्यामः यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः।।** (द्रष्टव्य–धर्मशास्त्र का इतिहास–पी.वी.काणे–पृ.–4) अर्थात् धर्म वही है, जिससे आनंद एवं निःश्रेयस सिद्धि हो। यही अर्थ महाभारत में भी दिया गया है। महाभारत के अनुशासनपर्व में धर्म के लक्षण के रूप में अहिंसा का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है–

अहिंसालक्षणो धर्म इति धर्मविदो विदुः।
यदहिंसात्मकं कर्म तत् कुर्यादात्मवान्।। (अनुशासनपर्व–116.12)

अर्थात् धर्मज्ञ पुरुष यह जानते हैं कि अहिंसा ही धर्म का लक्षण है। मनस्वी पुरुष वही कर्म करे, जो अहिंसात्मक हो, क्योंकि अहिंसा परम धर्म है। जैसा कि अनुशासन पर्व में ही कहा गया है–

अहिंसा परमो धर्मस्तथाहिंसा परमं तपः।
अहिंसा परमं सत्यं यतो धर्मः प्रवर्तते।। (अनुशासनपर्व–115.23)

अर्थात् अहिंसा परम धर्म है। अहिंसा परम तप है और अहिंसा परम सत्य है, क्योंकि उसी में धर्म की प्रवृत्ति होती है। जैसा कि कहा गया है कि अहिंसा धर्म में ही संपूर्ण धर्म समाहित हो जाते हैं–

यथानागपदेऽन्यानि पदानि पदगामिनाम्।
सर्वाण्येवापिधीयन्ते पदजातानि कौञ्जरे।।
एवं लोकेष्वहिंसा तु निर्दिष्टा धर्मतः पुरा। (अनुशासनपर्व–114.6)

अर्थात् जिस प्रकार हाथी के पैर के चिन्ह में सभी पदगामी प्राणियों के पद चिन्ह समा जाते हैं, उसी प्रकार पूर्वकाल में इस जगत के भीतर धर्मतः अहिंसा का निर्देश किया गया है अर्थात् अहिंसा धर्म में सभी धर्मों का समावेश हो जाता है। ऐसा माना गया है। क्योंकि–

ऋषयो ब्राह्मणा देवाः प्रशंसन्ति महामते।
अहिंसा लक्षणं धर्म वेदप्रमाण्य दर्शनात्।। (अनुशासनपर्व–114.2)

अर्थात् देवता, ऋषि और ब्राह्मण वैदिक प्रमाण के अनुसार सदा अहिंसा धर्म की प्रशंसा किया करते हैं। अहिंसाव्रत से आनृशंस्य भाव उत्पन्न होता है। महाभारत के वनपर्व में यक्ष–युधिष्ठिर संवाद के प्रसंग में यक्ष ने युधिष्ठिर से प्रश्न किया कि–

कश्च धर्मः परो लोके कश्च धर्मः सदाफलः।। (वनपर्व–313.75)

अर्थात् लोक में श्रेष्ठ धर्म क्या है? नित्य फल वाला धर्म क्या है ? तब महाराज युधिष्ठिर ने उत्तर दिया कि–

आनृशंस्यं परो धर्मस्त्रयी धर्मः सदाफलः।। (वनपर्व–313.76)

अर्थात् लोक में दया श्रेष्ठ धर्म है। वेदोक्त धर्म नित्य फल वाला है। वन पर्व में ही यक्ष ने युधिष्ठिर से प्रश्न किया कि–

किंस्विदेकपदं धर्म्यं??

अर्थात् धर्म का मुख्य स्थान क्या है? तब महाराज युधिष्ठिर ने उत्तर दिया–

दाक्ष्यमेकपदं धर्म्यं।। (वनपर्व– 313.69–70)

अर्थात् धर्म का मुख्य स्थान दक्षता है। दक्षता, कुशलता, चतुराई जिन व्यक्तियों में रहती है, धर्म वहां पर अपना स्थान बनाता है। वस्तुतः दक्ष व्यक्ति आचार संपन्न व्यक्ति माने जाते हैं और मनुस्मृति में आचार को ही परम धर्म कहा गया है–

आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च।
तस्मादस्मिन्सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान्द्विजः।।

आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते।
आचारेण तु संयुक्तः सम्पूर्णफल भाग्भवेत्।।

एवमाचरतो दृष्ट्वा धर्मस्य मुनयो गतिम्।
सर्वस्य तपसो मूलमाचारं जगृहुः परम्।। (मनुस्मृति–1.108–110)

अर्थात् वेद तथा स्मृति में कहा हुआ आचार ही परम धर्म है। इसलिए आत्मज्ञानी ब्राह्मण इसमें सदा युक्त रहे। आचार रहित ब्राह्मण वेद के फल को नहीं पाता और आचार से युक्त ब्राह्मण संपूर्ण फल को पाता है। इस भांति आचार से धर्म की गति को देखकर मुनिजनों ने संपूर्ण तप का मुख्य जड़आचार को माना है। ब्राह्मण चातुवर्ण्य (समाज) का मुख्य पथ प्रदर्शक है। यदि वह आचार–विचार संपन्न होगा तो समग्र (वर्ण, समाज) निश्चयेन आचार–विचार संपन्न होगा। इस दृष्टि से यहां पर समग्र लोक को ब्राह्मण में हस्तिपादन्यायेन समाहित कर दिया गया है। अतः यह शिक्षा समस्त समाज के मानव मात्र पर लागू होती है, किसी भी विशिष्ट के लिए नहीं।

6.2.2 धर्म का महत्व

धर्म मानव जीवन का आधार स्तंभ है। मानवरूपी गृह, धर्म की इसी नींव पर टिका हुआ है। अतः मनुष्य को सदैव धर्म का आश्रय लेकर ही रहना चाहिए। महाभारत में धर्म के महत्त्व का निरूपण करते हुए भीष्म पितामह युधिष्ठिर से कह रहे हैं–

शौचमावश्वकं कृत्वा देवतानां च तर्पणम्।
धर्ममाहुर्मनुष्याणामुपस्पृश्य नदीं तरेत्।।

सूर्यं सदोपतिष्ठेत न च सूर्योदयो स्वपेत्।
सयं प्रातः जपेत संध्यां तिष्ठन् पूर्वां तथेतराम्।। (शान्तिपर्व–193.4–5)

अर्थात् प्रतिदिन (मनुष्य) आवश्यक शौच का संपादन करके आचमन करे, फिर नदी में (वर्तमान काल में अपनी–अपनी सुविधानुसार) नहाए और अपने अधिकार के अनुसार संध्योपासना के अनंतर देवता आदि को तर्पण करे। इसे विद्वान् पुरुष मानव मात्र का धर्म बताते हैं। नित्यप्रति सूर्योपस्थान (सूर्य भगवान् को नमस्कार) करे। सूर्योदय के समय कभी न सोये। सायंकाल और प्रातः काल दोनों समय संध्योपासना करके गायत्री मंत्र का जप करे। महाभारत के अनुशासन पर्व में महर्षि गार्ग्य का कथन है–

आतिथ्यं सततं कुर्याद् दीपं दद्यात् प्रतिश्रये।
वर्जयेन दिवा स्वापं न च मांसानि भक्ष्येत्।।

गोब्राह्मणं न हिंस्याच्च पुष्कराणि च कीर्तयेत्।
एष श्रेष्ठतमो धर्मः सरहस्यो महाफलः।। (अनुशासनपर्व–127.9–10)

अर्थात् मानव सदा अतिथियों का सत्कार करे, घर में दीपक जलाए, दिन में सोना छोड़ दे। मांस कभी ना खाए। गौ और ब्राह्मण की हत्या न करे तथा तीनों पुष्कर तीर्थ (अजमेर स्थित तीन मन्दिर ज्येष्ठपुष्कर=भगवान् ब्रह्मा, मध्यमपुष्कर= भगवान् विष्णु, कनिष्ठपुष्कर=भगवान् रुद्र) का प्रतिदिन नाम लिया करे। यह रहस्य सहित श्रेष्ठतम धर्म महान् फल देने वाला है। इस प्रकार महाभारत के अनुशासन पर्व के दान–धर्म पर्व के अंतर्गत तथा शांतिपर्व के अंतर्गत धर्म के महत्व का बहुत विस्तार से विवेचन किया गया है। शांतिपर्व में मानस धर्म का वर्णन करते हुए कहा गया है–

मानसं सर्वभूतानां धर्ममाहुर्मनीषिणः।
तस्मात् सर्वेषु भूतेषु मनसा शिवमाचरेत्।। (शान्तिपर्व–193.31)

अर्थात् मनीषी पुरुषों का कथन है कि समस्त प्राणियों के लिए मंच द्वारा किया हुआ धर्म ही श्रेष्ठ है। अतः मन से संपूर्ण जीवन का कल्याण सोचता रहे। अब धर्म का आचरण मनुष्य कैसे करें, इस संदर्भ में अग्रिम पद्य में कहा गया है–

एक एव चरेद् धर्मं नास्ति धर्मे सहायता।
केवलं विधिमासाद्य सहायः किं करिश्यति।। (शान्तिपर्व–193.32)

अर्थात् मनुष्य को केवल वेद–विधि का सहारा लेकर अकेले ही धर्म का आचरण करना चाहिए। उसमें सहायता की आवश्यकता नहीं है। कोई दूसरा सहायक आकर क्या करेगा ? इसलिए किसी सहायक चाहे वह घर का कोई भी सदस्य हो, सहायक न बनने पर धर्म की मर्यादा का अकेले ही पालन करना चाहिए। क्योंकि–

धर्मो योनिर्मनुष्याणां देवानाममृततं दिवि।
प्रेत्यभावे सुखं धर्माच्छश्वत्तैरुपभुज्यते।।(शान्तिपर्व–193.33)

अर्थात् धर्म ही मनुष्य की योनि है। वही स्वर्ग में देवताओं का अमृत है। धर्मात्मा मनुष्य मरने के पश्चात धर्म के ही बल से सदा सुख भोगते हैं। क्योंकि–

अपि कतुशतैरिष्ट्वा क्षयं गच्छति तद्धविः।
न तु क्षीयन्ति ते धर्माः श्रद्दधानैः प्रयोजिताः।। (अनुशासनपर्व–127.11)

अर्थात् सैकडों बार किए हुए यज्ञ का फल क्षीण हो जाता है, किन्तु श्रद्धालु पुरुषों द्वारा उपर्युक्त धर्मों का पालन किया जाए तो वे कभी क्षीण नहीं होते। अतः धर्म का महत्त्व सर्वथा असंदिग्ध है। इसलिए समग्र पुरुषार्थों की सम्यक् प्राप्ति के लिए धर्माचरण करना चाहिए। यही इस समस्त धर्मशास्त्रीय ग्रंथों का एकमत्या कथन है।

6.2.3 धर्म के उपादान

डॉ. पी. वी. काणे ने अपने ग्रंथ धर्मशास्त्र का इतिहास के प्रथम भाग के अध्याय 1 के अंतर्गत जहां उन्होंने धर्म शास्त्र के विभिन्न विषयों की चर्चा की है, वहीं पर उन्होंने लिखा है कि प्राचीन काल में धर्म–संबंधी धारणा बड़ी व्यापक थी और वह मनुष्य के संपूर्ण जीवन को स्पर्श करती थी। धर्मशास्त्रकारों के मतानुसार धर्म किसी सम्प्रदाय या मत का द्योतक नहीं है, प्रत्युत यह जीवन का एक ढंग या आचरण–संहिता है, जो समाज के किसी अंग एवं व्यक्ति के रूप में मनुष्य के कर्मों एवं कृतियों को व्यवस्थापित करता है तथा उसमें क्रमशः विकास लाता हुआ उसे मानवीय अस्तित्व के लक्ष्य तक पहुंचने के योग्य बनाता है। इसी दृष्टिकोण के आधार पर धर्म को दो भागों में बांटा गया– श्रौत और स्मार्त। श्रौत धर्म में उन कृत्यों एवं संस्कारों का समावेश था, जिनका प्रमुख संबंध वैदिक संहिताओं एवं ब्राह्मणों से था। यथा– तीन पवित्र अग्नियों की प्रतिष्ठा, पूर्णमासी एवं अमावस्या के यज्ञ तथा सोमकृत्य आदि। स्मार्त धर्म में उन विषयों का समावेश था जो विशेषता स्मृतियों में वर्णित हैं तथा वर्णाश्रम से संबंधित है। जैसा की मत्स्यपुराण में कहा गया है–

दाराग्निहोत्रसम्बन्धमिज्या श्रौतस्य लक्षणम्।
स्मार्तो वर्णाश्रमाचारो यमैश्च नियमैर्युतः।। (मत्स्यपुराण–144.30–31–31)

अर्थात् अग्निहोत्र से संबंधित यागादिक क्रियाएं श्रौतधर्म का लक्षण है तथा वर्णाश्रम का आचार–यम–नियम का पालन– ये स्मार्त धर्म का लक्षण है।

महाभारत के अनुशासन पर्व में उमा–माहेश्वर संवाद के प्रसंग में तीन प्रकार के धर्म का कथन करते हुए भगवान् माहेश्वर ने कहा है–

इमे ते लोक धर्मार्थं त्रयः सृष्टाः स्वयम्भुवा।
पृथिव्यां सर्जने नित्यं सृष्टांस्तानपि मे श्रुणु।।

वेदोक्तः परमो धर्मः स्मृतिशास्त्रगतोऽपरः।
शिष्टाचीर्णोऽपरः प्रोक्तस्त्रयो धर्माः सनातनाः।।(अनुशासनपर्व–141.64–65)

अर्थात् ब्रह्मा जी ने संपूर्ण जगत् की रक्षा के लिए तीन प्रकार के धर्म का विधान किया है। पृथ्वी की सृष्टि के साथ ही इन तीनों धर्म की दृष्टि हो गई है, इनको भी तुम मुझसे सुनो– ''पहला है– 'वेदोक्त धर्म, जो सबसे उत्कृष्ट धर्म है।' दूसरा है– वेदानुकुल स्मृति–शास्त्र में वर्णित–स्मार्त धर्म और तीसरा है– शिष्ट पुरुषों द्वारा आचरित्र धर्म (शिष्टाचार)। ये तीनों धर्म सनातन हैं। आपस्तम्बधर्मसूत्र में कहा गया है–

अथातः सामयाचारिकान्धर्मान्व्याख्यास्यामः।। धर्मज्ञसमयः प्रमाणम्।। वेदाश्च।।
(आपस्तम्बधर्मसूत्र–1.1–3)

अर्थात् सामयाचारिक धर्म की व्याख्या की जा रही है कि जो धर्मज्ञ हैं, जो वेदों को जानते हैं, उनका मत ही धर्म में प्रमाण है। हिरण्यकेशी धर्मसूत्र में अक्षरशः आपस्तम्ब का कथन किया गया है। इसी प्रकार बौधायन धर्मसूत्र में कहा गया है–

उपदिष्टो धर्मः प्रतिवेदम्। तस्यानुव्याख्यास्यामः। स्मार्तो द्वितीयः। तृतीयः शिष्टागमः।। (बौधायनधर्मसूत्र–1.1–3)

धर्म के स्रोत व विविध प्रकार – (मनुस्मृति 2/12, 6/92, 10/63, याज्ञवल्क्य स्मृति 1/1, 7/3, विष्णु पुराण 2/16–17)

अर्थात् वेदों में धर्म उपदिष्ट है, द्वितीय स्मृतियों में उसी के आधार पर व्याख्यायित है तथा तृतीय शिष्टों के द्वारा आचरण में लाया गया। धर्माचार तथा धर्म के वर्ण्य विषय की सुस्पष्ट व्याख्या करते हुए वशिष्ठ धर्मसूत्र में कहा गया है–

अथातः पुरुषनिःश्रेयसार्थं धर्मजिज्ञासा।।1।।
ज्ञात्वा चानुतिष्ठन्धार्मिकः।।2।।

प्रशस्यतमो भवती लोके च प्रेत्य च स्वर्गलोकं अश्नुते।।3।।
श्रुतिस्मृतिविहितो धर्मः।।4।।
तदलाभे शिष्टाचारः प्रमाणम्।।5।। (वशिष्ठधर्मसूत्र–1.1–5)

अर्थात् पुरुष के निःश्रेयस हेतु धर्म जिज्ञासा है तथा जो इसे जानकर तदनुसार इसका अनुष्ठान करे वही धार्मिक एवं प्रशस्त है। वह लोक में, पितृलोक में अथवा स्वर्गलोक में भोग स्थान ग्रहण करता है। अतः श्रुति तथा स्मृति में जिसे कहा गया है वही धर्म है। इनकी अनुपस्थिति में शिष्टाचार ही प्रमाण है। विष्णु धर्मसूत्र का कथन है–

क्षमा सत्यं दया शौचं दानमिन्द्रियसंयमः।
अहिंसा गुरुशुश्रुषा तीर्थानुसरणं दया।।

आर्जवं लोभशून्यत्वं देवब्राह्मणपूजनम्।
अनभ्यसूया च तथा धर्मः सामान्य उच्यते।। (विष्णुधर्मसूत्र–2.16–17)

अर्थात् क्षमा, सत्य, दया, पवित्रता, दान, इंद्रिय–संयम, अहिंसा, गुरु–सेवा, तीर्थाटन, दया, आर्जव (सीधापन), अलोभ, देव–ब्राह्मण का पूजन, असूया (ईर्ष्या) ये सामान्य रूप से धर्म कहे गए हैं। मनुस्मृति के अनुसार धर्म के पांच प्रकार के उपादान हैं–

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च।। (मनुस्मृमि–2.6)

अर्थात् संपूर्ण वेद, वेदज्ञों की परंपरा एवं व्यवहार, साधुओं का आचार तथा आत्मतुष्टि। ठीक इसी प्रकार का कथन याज्ञवल्क्यस्मृति में भी प्राप्त होता है, जिसमें कहा गया है–

श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
सम्यक् संकल्पजः कामो धर्ममूलमिदं स्मृतम्।। (याज्ञवल्क्यस्मृति–1.7)

अर्थात् वेद, स्मृति (परंपरा चला आया हुआ ज्ञान), सदाचार (भद्र लोगों के आचार–व्यवहार), अपने को प्रिय लगे तथा उचित संकल्प से उत्पन्न अभिकांक्षा–ये ही परंपरा से चले आए हुए धर्म के उपादान माने गए हैं। इस प्रकार विभिन्न शास्त्रों में वर्णित प्रमाणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि धर्म के मूल उपादान के रूप में वेदों, स्मृतियों तथा परंपरा से चला आया हुआ शिष्टाचार (सदाचार) को माना गया है।

6.3 धर्म के स्रोत

धर्म के स्रोत के रूप में प्रमुख रूप से संस्कृत वांग्मय का समग्र सूत्र–साहित्य, आचार्य कौटिल्य का अर्थशास्त्र, समग्र स्मृति–साहित्य, रामायण, महाभारत कथा पुराण का

परिगणन किया गया है। इनमें धर्म के समग्र स्रोत विविध प्रकार से व्याख्यायित किए गए हैं।

6.3.1 श्रुति–साहित्य (वेद)

मनुस्मृति का कथन है–**श्रुतिस्तुवेदोविज्ञेयो।।** (मनुस्मृति–2.10) अर्थात् श्रुति वेद को कहते हैं। संपूर्ण वेदों में धर्मशास्त्र के स्रोत की सामग्री प्राप्त होती है। कूर्मपुराण के पूर्व विभाग में कहा गया है–

स्मृतिश्चांगिरसः।
श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यक् कर्मवर्णाश्रममात्मकम्, श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितौ धर्मो यज्ञादिको मतः।।

(कूर्मपुराण–पूर्वविभाग–12.8,11.265–266)

अर्थात् श्रुतियां और स्मृतियां कर्म एवं वर्णश्रमात्मक हैं। इनमें यागादिक धर्मों का विवेचन प्राप्त होता है। धर्म के अभिधायक शास्त्र के रूप में वेदों को ही प्रतिपादित करते हुए कूर्मपुराण में ही कहा गया है–

न वेदादृते किञ्चिच्छास्त्रधर्माभिधायकम्।
योऽन्यत्र रमते सोऽसौ न सम्भाष्यो द्विजातिभिः।।

यानि शास्त्राणि दृश्यन्ते लोकेऽस्मिन् विविधानि तु।
श्रुतिस्मृति विरुद्धानि निष्ठा तेषां हि तामसी।।

वर्णानामनुकम्पार्थं मन्नियोगाद् विराट् स्वयम्।
स्वायम्भुवो मनुर्धर्मान् मुनीनां पूर्वमुक्तवान्।। (कूर्मपुराण–पूर्वविभाग–11.271–273)

अर्थात् वेद से इतर कोई भी शास्त्र धर्म के अभिधान के निमित्त प्रमाणित शास्त्र नहीं है। जो भी वेद के अतिरिक्त अन्यत्र प्रयत्नशील हैं, द्विजातियों को उनसे संभाषण नहीं करना चाहिए। इस संसार में जितने भी श्रुति–स्मृति विरुद्ध शास्त्र देखे जाते हैं, उनकी निष्ठा तामसी है। अतः वर्णों पर अनुकंपा करने के लिए स्वयं विराट (भगवान्) ने स्वायंभुव मनु तथा मुनियों से धर्म के स्वरूप का कथन किया।

6.3.2 स्मृति–साहित्य

स्मृतियों के संदर्भ में महाराज मनु का कथन है–**धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः।।** (मनुस्मृति–2.10) अर्थात् धर्मशास्त्र, स्मृतियों को जानना चाहिए। डॉ. दिलीप कुमार नाथाणी ने अपने ग्रंथ धर्मशास्त्र का वृहद इतिहास, भाग–1, स्मार्तखंड के पृष्ठ संख्या–54 पर स्मृतिरत्नावली के एक पद्य को उद्धृत किया है, जिसमें स्मृति के महत्व का निरूपण करते हुए कहा गया है–

स्मृतिं विना न हि ज्ञानं धर्मस्य भवति क्वचित्।
न तु ज्ञायते रूपमालोकेन विना यथा।।

अर्थात् जिस प्रकार आलोक के बिना रूप का सम्यक ज्ञान नहीं होता है, उसी प्रकार बिना स्मृतियों के धर्म का कोई ज्ञान नहीं होता है। स्मृतियों के औचित्य का प्रतिपादन करते हुए स्मृतिचंद्रिका में कहा गया है–

दुर्बोधा वैदिकाश्शब्दाः प्रकीर्णत्वाच्च ये खिलाः।
तज्ज्ञैस्त एवं स्पष्टार्थाः स्मृतितन्त्रे प्रतिष्ठिताः।। (स्मृतिचन्द्रिका–भाग–1,पृ.3)

अर्थात् वैदिक शब्द दुर्बोध और प्रकीर्णित हैं, इसलिए उनका स्पष्ट अर्थ प्राप्त करने के लिए स्मृतियों की प्रतिष्ठा की गई है। स्कन्दपुराण में कहा गया है–

स्मृतयो धर्ममूलं हि धर्मः सर्वार्थसाधनं।
अतः स्मृतिषु दत्तासु सर्वदानफलं भवेत्।। (उद्धृत–धर्म शा0 का वृ0 इति0 भाग–1,पृ.103)

अर्थात् स्मृतियां धर्म का मूल हैं तथा धर्म का सर्वार्थ साधन हैं। इसलिए स्मृतियों के दान से समस्त दान का फल प्राप्त होता है। स्मृतियों की संख्या बहुत अधिक है। इनको विस्तार के साथ धर्मशास्त्र के इतिहास ग्रंथ में देखा जा सकता है। प्रमुख स्मृतियों के ग्रुप में मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति, अत्रिस्मृति, विष्णुस्मृति, व्यासस्मृति, आपस्तम्बस्मृति, वशिष्ठस्मृति तथा पराशरस्मृति आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके अंतर्गत मानव धर्मशास्त्र के समस्त कानूनी प्रावधानों का उल्लेख प्राप्त होता है।

6.3.3 रामायण

श्रीमद्व वल्मीकिय रामायण में भी विभिन्न स्थलों पर धर्मशास्त्रीय तत्व देखने को मिलते हैं। रामायण के महात्म्य वर्णन के प्रथम अध्याय (मूलतः श्री– स्कंदपुराण उत्तरखण्ड के नारद और सनत्कुमार संवाद से संग्रहीत) में ऋषि– मुनियों को रामायण के कथा श्रवण का फल वर्णन करते हुए श्री सूत जी ने कहा–

दुःस्वप्ननाशनं धन्यं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्।
रामचन्द्रकथोपेतं सर्वकल्याणसिद्धिदम्।।

धर्मार्थकाममोक्षाणां हेतुभूतं महाफलम्।
अपूर्व पुण्यफलदं शृणुध्वं सुसमाहिताः।।(श्रीरामायणमाहात्म्य–अ.1.20–21)

अर्थात् भगवान् श्रीराम की कथा से युक्त रामायण के श्रवण–पठन से दुःस्वप्नों का नाश हो जाता है तथा सब प्रकार के कल्याण एवं सिद्धियों को प्रदान करने वाला है। रामायण धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थ का साधक है, महान फल देने वाला है। अपूर्व पुण्य फलदायी इस महाकाव्य को आप सब मुनिगण एकाग्र चित्त होकर श्रवण करें। क्योंकि–

महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकैः।
श्रुत्वैतदार्षं दिव्यं हि काव्यं शुद्धिमवाप्नुयात्।।

श्रामायणेन वर्तन्ते सुतरां ये जगद्धिताः।
त एव कृतकृत्याश्च सर्वशास्त्रार्थकोविदाः।। (श्रीरामायणमाहात्म्य–अ.1.22–23)

अर्थात् महान् पातकों अथवा सम्पूर्ण उपपातकों से युक्त मनुष्य भी महर्षि वाल्मीकि प्रणीत दिव्य काव्य का श्रवण करने से शुद्धि (अथवा सिद्धि) प्राप्त कर लेता है। सम्पूर्ण जगत के हित–साधन में लगे रहने वाले जो मनुष्य सदा रामायण के अनुसार बर्ताव (व्यवहार) करते हैं, वे ही सम्पूर्ण शास्त्रों के मर्म को समझने वाले और कृतार्थ हैं। रामायण के बालकाण्ड के सप्तम सर्ग में राजधर्म और नीति का वर्णन किया गया है। अयोध्याकाण्ड के 100वें सर्ग में श्रीराम द्वारा भरत के कुशल–प्रश्न के बहाने से बहुत

हितकारी राजनीतिक उपदेश का वर्णन प्राप्त होता है। अयोध्याकाण्ड के सर्ग 24, 26–27, 29, 39, 117 तथा 118 में स्त्रीधर्म का रोचक विवेचन प्राप्त होता है। इसी प्रकार अयोध्याकाण्ड की सर्ग 77, 103, 111, 104 तथा 120 में श्राद्धकर्म का वर्णन मिलता है। किष्किन्धाकाण्ड सर्ग 17, 36–37 में पातक का वर्णन मिलता है। इसी प्रकार रामायण के समग्र काण्डों में धर्मशास्त्र के विभिन्न तत्वों का वर्णन प्राप्त होता है।

6.3.4 महाभारत

महाभारत के विषय में एक लोकोक्ति अत्यंत प्रसिद्ध है–यन्न भारते तन्न भारते।। अर्थात् जो कुछ है महाभारत में नहीं है, वह भारत राष्ट्र में नहीं है। महाभारत सर्वश्रेष्ठ धर्मशास्त्र है। इसमें धर्मशास्त्र संबंधी समस्त विषयों का विवेचन इसके 18 पर्वों में विस्तार से किया गया है। महाभारत के आदिपर्व के अन्तर्गत महाभारत को धर्मशास्त्र और मोक्षशास्त्र के रूप में प्रतिपादित करते हुए वैशम्पायन मुनि ने कहा है–

धर्मशास्त्रमिदं पुण्यशास्त्रमिदं परम्।
मोक्षशास्त्रमिदं प्रोक्तं व्यासेनामितबुद्धिना।। (श्रीमहाभारत–आदिपर्व–62.23)

अर्थात् महाराज जनमेजय! अमित मेधावी महर्षि वेदव्यास जी ने महाभारत को पुण्य में धर्मशास्त्र, उत्तम अर्थशास्त्र तथा सर्वोत्तम मोक्षशास्त्र कहा है। क्योंकि यह महाभारत मानवमात्र (जीवमात्र) का कल्याण करने वाला ग्रंथ है। महात्मा सौति (उग्रसवा) ने शौनक मुनि को इस ग्रन्थ का प्रयोजन बताते हुए कहा है–

अज्ञानतिमिरान्धस्य लोकस्य तु विचेष्टतः।
ज्ञानाञ्जनशलाकाभिर्नेत्रोन्मीलनकारकम्।।

धर्मार्थकाममोक्षार्थैः समासव्यासकीर्तनैः।
तथा भारत सूर्येण नृणां विनिहतं तमः।। (श्रीमहाभारत–आदिपर्व–1.84–85)

अर्थात् संसारी जीव अज्ञानान्धकार से अंधे होकर छटपटा रहे हैं। यह महाभारत ज्ञानाञ्जन की शलाका लगाकर उनकी आंख खोल देता है। वह शलाका क्या है ? धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप पुरुषार्थ का संक्षेप और विस्तार से वर्णन। यह न केवल अज्ञान की रतौंधी दूर करता है, प्रत्युत सूर्य के समान उदित होकर मनुष्य की आंखों के सामने का संपूर्ण अंधकार ही नष्ट कर देता है। महाभारत के अनेक धर्म शास्त्रीय स्रोतों उद्धरणों को इस पाठ्यांश के पूर्व में प्रस्तुत भी किया गया है। महाभारत के शांति पर्व में यज्ञोपवीत, वेदाध्ययन एवं समावर्तन संस्कारों का वर्णन किया गया है। आदिपर्व में आश्रम धर्म, शांतिपर्व में गृहस्थ धर्म, क्षत्रिय धर्म तथा ज्ञानी महात्माओं की प्रशंसा का वर्णन मिलता है। शान्तिपर्व के 109वें अध्याय में व्यावहारिकनीति का वर्णन मिलता है। शान्तिपर्व एवं अनुशासनपर्व के अंतर्गत यज्ञ एवं वर्णाश्रम धर्म का विस्तार के साथ विवेचन मिलता है। अतः महाभारत धर्मशास्त्रीय तत्वों का महान् भण्डारागार है।

6.3.5 पुराण

याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा गया है–

पुराण–न्याय–मीमांसा–धर्मशास्त्रंगमिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश।।
(याज्ञवल्क्यस्मृति–उपोद्घात–श्लोक–2)

धर्म के स्रोत व विविध प्रकार – (मनुस्मृति 2/12, 6/92, 10/63, याज्ञवल्क्य स्मृति 1/1, 7/3, विष्णु पुराण 2/16–17)

अर्थात् पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र, चार वेद और छः वेदांग ये सब चतुर्दश विद्याएँ हैं तथा धर्म के स्थान आधार अथवा स्थिति हैं। इस श्लोक में पुराण को वेद के सदृश्य ही पवित्र और उपादेय बतलाया गया है। व्यासस्मृति में कहा गया है–

मीमांसते च यो वेदान् षड्भिरंगैः सविस्तरैः।
इतिहासपुराणानि स भवेद् वेदपारगः।। (व्यासस्मृति–4.45)

अर्थात् जो वेदों को छः अंग सहित तथा इतिहास और पुराण को भी पढ़ता है, वह वेदपारंगत कहा जाता है। अतः वेदाध्ययन के साथ–साथ पुराण की मीमांसा भी अपेक्षित है, नहीं तो वेद पारंगत नहीं कहा जा सकता है। इस प्रकार पुराणों की भी महत्ता है। जिस प्रकार महाभारत में विविध धर्म के तत्व व्याख्यायित हैं, उसी प्रकार पुराण में भी प्रतिपादित हैं। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने अपने पुराण–विमर्श नामक ग्रंथ के पृष्ठ संख्या 304 पर अत्रिसंहिता का पद्य उद्धृत किया है, जिसमें कहा गया है–

अग्निहोत्र तपः सत्यं वेदानां चैव साधनम्।
आतिथ्यं वैश्वदेवं च इष्टमित्यभिधीयते।।

वापीकूपतडागानि देवतायतनानि च।
अन्नप्रदानमर्थिभ्यः पूर्तमित्यभिधीयते।। (अत्रिसंहिता–43–44 तथा मार्कण्डेयपुराण–16.23,124 एवं अग्निपुराण–209.2–3)

अर्थात् अग्निहोत्र, तप, सत्य, वेदाध्ययन, आतिथ्य, वैश्वदेवयज्ञ–यह सब इष्टकर्म कहे जाते हैं। जनकल्याण के निमित्त वापी, कूप, तड़ाग, देव मंदिर, अन्नदान आदि पूर्त–कर्म कहे जाते हैं । इन सब कर्मों का पुराणों में सविस्तर विवेचन प्राप्त होता है। मत्स्यपुराण–अध्याय–219–226 में राजधर्म का विवेचन मिलता है। इसी प्रकार अग्नि पुराण–218–237 अध्याय में भी राजधर्म का विस्तार सहित विवेचन प्राप्त होता है। अग्निपुराण के 238–242 अध्याय में राम के द्वारा लक्ष्मण जी को बतलाई गई नीति का विवेचन मिलता है। गरुड़पुराण अध्याय–108–115 में नीति का उपदेश मिलता है। विष्णुपुराण अंश–3 के अध्याय–8–16 के अंतर्गत वर्णाश्रम के कर्तव्य, नित्य नैमित्तिक क्रियाएं, गृहस्थ सदाचार, पंच महायज्ञ, जातकर्म एवं अन्य संस्कार, मृत्यु पर अशौच तथा श्राद्धक्रिया का वर्णन प्राप्त होता है। इस प्रकार समस्त पुराणों में धर्म के स्रोत का महान् भण्डार प्राप्त होता है।

6.3.6 अर्थशास्त्र

डॉ. पी.वी. काणे ने अपने गन्थ धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग–1 के पृष्ठ संख्या–29 पर लिखा है कि अर्थशास्त्र एवं धर्मशास्त्र में आदर्श संबंधी विभेद है, किन्तु वास्तव में अर्थशास्त्र धर्मशास्त्र की एक शाखा है, क्योंकि अर्थशास्त्र में राजा के कर्तव्य एवं उत्तरदायित्वों की चर्चा होती ही है। जैसा कि याज्ञवल्क्यस्मृति में कहा गया है–

धर्मशास्त्रान्तर्गतमेव राजनीतिलक्षणमर्थशास्त्रमिदं विवक्षितम्।।

मिताक्षरा–(याज्ञवल्क्यस्मृति–2.21) कौटिल्य के अर्थशास्त्र में धर्मस्थीय एवं कंटक शोधन

नामक दो प्रकरण हैं। अतः इसका इस पुस्तक में विवेचन होना उचित ही है। शौनक कृत चरणव्यूह के मतानुसार अर्थशास्त्र अथर्ववेद का उपवेद है। जैसा कि स्वयं कौटिल्य ने लिखा है–

तस्याः पृथिव्या लाभपालनोपायानां शास्त्रमर्थशास्त्रमिति।।

(कौटिल्य–अर्थशास्त्र–15.1) अर्थात् इस शास्त्र का उद्देश्य है पृथ्वी के लाभ–पालन के साधनों का उपाय करना। अर्थशास्त्र के लिए धर्मस्थीय अधिकरण में विवाह संबंध, धर्म विवाह, स्त्री धन, स्त्री–पुनर्विवाह का अधिकार, दाय विभाग, गृहनिर्माण (वास्तुक) तथा दास और श्रमिक संबंधी नियमों का विवेचन किया गया है। कंटकशोधन नाम प्रकरण के अंतर्गत राजधर्म के विभिन्न नियमों एवं मानदंडों का विवेचन किया गया है। इस प्रकार अर्थशास्त्र के कुल 15 अधिकरणों के 150 अध्यायों में आचार्य कौटिल्य ने चारों वेदों, अथर्ववेद के मंत्रप्रयोग, छः वेदांगों, इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र एवं अर्थशास्त्र की विधिवत् मीमांसा प्रस्तुत की है।

6.4 धर्म के विविध प्रकार

6.4.1 मनुस्मृति

मनुस्मृति के द्वितीय अध्याय में धर्म के प्रकारों का उल्लेख करते हुए कहा गया है–

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्।। (मनुस्मृति–2.12)

अर्थात् (i) वेद (ii) स्मृति (iii) सदाचार और (iv) अपनी अनुकूलता (आत्मतुष्टि) के अनुसार कर्म करना– यह चार प्रकार का धर्म का साक्षात् लक्षण कहा गया है। धर्म के इन साक्षात् चार प्रकारों के अतिरिक्त मनुस्मृति के षष्ठ अध्याय में दस और भी प्रकारों का उल्लेख करते हुए कहा गया है–

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्।। (मनुस्मृति–6.92)

अर्थात् (i) संतोष (धैर्य) (ii) क्षमा (iii) दम=मन को वश में रखना (iv) अस्तेय=न्याय से धनार्जन करना (v) शौच=पवित्रता (vi) इन्द्रियनिग्रह=इन्द्रियों को वश में रखना (vii) धी=बुद्धि (viii) विद्या=ज्ञान (ix) सत्य और (x) अक्रोध=क्रोध न करना– ये धर्म के दस लक्षण प्रकार हैं। चारों प्रकार के आश्रमियों को इनका नित्य सेवन पालन करना चाहिए। धर्म के इन दस प्रकारों के अतिरिक्त सार रूप में महाराज मनु ने धर्म के पांच और प्रकारों का वर्णन करते हुए कहा है–

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
एतं सामासिकं धर्म चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः।। (मनुस्मृति–10.63)

6.4.2 याज्ञवल्क्यस्मृति

याज्ञवल्क्यस्मृति के आचाराध्याय के प्रथम श्लोक में कहा गया है–

योगीश्वरं याज्ञवल्क्यं संपूज्य मुनयोऽब्रुवन्।
वर्णाश्रमेतराणां नो ब्रूहि धर्मानशेषतः।।(याज्ञवल्क्यस्मृति–आचाराध्याय–1)

अर्थात् किसी समय सोम श्रवस आदि मुनियों ने योगि श्रेष्ठ याज्ञवल्क्य मुनि की भली–भांति पूजा करके पूछा कि महाराज! ब्राह्मण आदि वर्ण, ब्रह्मचर्या आदि आश्रम और दूसरे अनुलोम–प्रतिलोम संकर जातियों का सम्पूर्ण धर्म हम लोगों से कहिए। तब मुनियों के प्रश्न का उत्तर देते हुए याज्ञवल्क्य मुनि ने कहा–

पुराणन्यायमीमांसा धर्मशास्त्रांगमिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश।।
(याज्ञवल्क्यस्मृति–आचाराध्याय–3)

अर्थात् (i) पुराण= अठारह पुराण (ii) न्याय (iii) मीमांसा (iv) धर्मशास्त्र और (v) व्याकरणादि छः अंगों सहित चारों वेद– ये चौदह, विद्या के अर्थात् पुरुषार्थ ज्ञान के और धर्म के कारण हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने धर्म के मूल प्रकारों का विवेचन करते हुए कहा है–

श्रुतिस्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
सम्यक् संकल्पजः कामो धर्ममूलमिदं स्मृतम्।।
(याज्ञवल्क्यस्मृति–आचाराध्याय–7)

अर्थात् (i) श्रुति अर्थात् वेद (ii) स्मृति अर्थात् धर्मशास्त्र (iii) अपनी आत्मा को प्रिय लगने वाला कर्म, जो धर्मशील लोग करते आयें हों तथा (iv) श्रुति संकल्प से उत्पन्न जो कामना है– ये सब धर्म के मूल किंवा प्रकार हैं। इस प्रकार याज्ञवल्क्य मुनि ने धर्म के विविध प्रकारों का विवेचन किया है। इसके और वृहद् तथा सम्यग्ज्ञान के लिए याज्ञवल्क्य मुनि का समग्र आचाराध्याय पढ़ना अपेक्षित है।

6.4.3 विष्णुपुराण

श्रीविष्णुपुराण के तृतीय अंश के षष्ठ अध्याय में श्री पाराशर मुनि ने धर्म के प्रकारों का विश्लेषण करते हुए मैत्रेय मुनि से कहा है–

अंगानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः।
पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताष्चतुर्दश।।

आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चैव ते त्रयः।
अर्थशास्त्रं चतुर्थं तु विद्या ह्यश्टादशैव ताः।। (श्रीविष्णुपुराण–3.6.28–29)

अर्थात् (i) छः वेदांग (ii) चार वेद (iii) मीमांसा (iv) न्याय (v) पुराण और (vi) धर्मशास्त्र– ये ही चौदह विद्याएं हैं। इन्हीं में आयुर्वेद, धनुर्वेद और गान्धर्व– इन तीनों को तथा चौथे अर्थशास्त्र को मिला लेने से कुल अठारह विद्याएं हो जाती हैं। ये अठारह विद्याएं ही अठारह प्रकार के धर्म की संज्ञा से अभिहित हैं। इनमें से किसी एक का ही सम्यक् अध्ययन, अनुशीलन,चिन्तन–मनन अथवा आचरण में अवतारित कर लेने से मनुष्य का इहलोक–परलोक दोनों सिद्ध हो जाता है और यदि कोई समस्त विद्याओं (धर्म के प्रकारों) का अध्ययन कर ले तो कहना ही क्या है? इस प्रकार धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में मानव जीवन के परिष्कारार्थ एवं कल्याणार्थ धर्म के विविध प्रकारों का वर्णन किया गया है।

6.5 सारांश

संस्कृत वाङ्मय में धर्म–तत्त्व का प्रतिपादन करने वाले धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों यथा– सूत्रसाहित्य, स्मृतिसाहित्य, रामायण, महाभारत, पुराण एवं अर्थशास्त्र का अन्यतम स्थान है। वस्तुतः ये धर्मशास्त्रीय ग्रन्थ संस्कृत वाङ्मय की रीढ़ हैं। समग्र साहित्य का अध्ययन एवं प्रयोजन मानव–जीवन के विभिन्न पहलुओं को अनुरंजित करना किंवा अपने ज्ञान–विज्ञान अथवा साहित्यानन्द से मनोरंजित करना हो सकता है, परन्तु धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों का सीधा–सीधा सम्बन्ध मानव जीवन के मूल उत्स से जुड़ा हुआ है तथा वह अपने प्रयोजन से मानवमात्र को उसके परमलक्ष्य तक पहुंचाता है। महाभारत के अनुशासनपर्व पर्व में बतलाया गया है कि इस पृथ्वी की सृष्टि के साथ–साथ परमपिता ब्रह्मा जी ने जगत् की रक्षा के लिए तीन प्रकार के धर्मों का विधान किया था– उनमें प्रथम वेदोक्त धर्म है, जिसे सर्वश्रेष्ठ बतलाया गया है।द्वितीय वेदानुकूल स्मृतिशास्त्रों में वर्णित स्मार्त धर्म है तथा तृतीय शिष्टपुरुषों द्वारा पालित शिष्टाचार धर्म है। इन तीनों धर्मों को ही सनातन धर्म कहा गया है। इनके आचरण से मानव त्रिवर्ग (धर्मार्थकाम) को साधता हुआ अपने जीवन के परम लक्ष्य (मोक्ष) को प्राप्त करता है। इस इकाई के अन्तर्गत धर्म के इस महानतम् रहस्य को प्रस्तुत किया गया है।

6.6 शब्दावली

1. निःश्रेयसः = मोक्ष या परमानन्द
2. जिहीर्षन्तः = अपहरण करने की इच्छा रखकर
3. आख्येयं = कहना
4. नागपदः = हाथी के पैर
5. आनृशंस्य = दया
6. दाक्ष्य = दक्षता
7. क्रतु = यज्ञ
8. अश्नुते = प्राप्त करना
9. आर्जव = सीधापन
10. असूया = ईर्ष्या

6.7 बोध/अभ्यास प्रश्नः

बोध प्रश्न–

1. धर्म शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ क्या है?
2. महाभारत के अनुसार परम धर्म क्या है?
3. किस धर्म में सभी धर्मों का समावेश हो जाता है?
4. लोक में श्रेष्ठ धर्म क्या है?
5. नित्यफल वाला धर्म क्या है?
6. एक पद में धर्म का क्या अर्थ है?
7. मनुस्मृति के अनुसार परम धर्म क्या है?
8. श्रौतधर्म का लक्षण क्या है?
9. स्मार्तधर्म का लक्षण क्या है?

10. 'वेदोऽखिलो धर्ममूलं' किस ग्रन्थ की उक्ति है?

धर्म के स्रोत व विविध प्रकार – (मनुस्मृति 2/12, 6/92, 10/63, याज्ञवल्क्य स्मृति 1/1, 7/3, विष्णु पुराण 2/16–17)

अभ्यास प्रश्न–

1. धर्म के विभिन्न उपादानों का वर्णन कीजिए।
2. धर्म के महत्त्व का विश्लेषण कीजिए।
3. धर्म के स्रोत ग्रन्थों पर प्रकाश डालिए।
4. धर्म के विविध प्रकारों पर निबन्ध लिखिए।
5. चतुर्दश विद्या के महत्त्व को समझाइये।

6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

(i)ध्रियते लोकोऽनेन, धरति लोकं वा (ii) अहिंसा परमो धर्मः (iii) अहिंसा धर्म में (iv) दया (v) वेदोक्त धर्म (vi)दक्षता (vii) आचार (viii) यागादिक क्रियाएं (ix) वर्णाश्रम का आचार–यम–नियम का पालन(x) मनुस्मृति।

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी स्वयं करें।

6.9 उपयोगी पुस्तकें

1. ऋग्वेद का सुबोध भाष्य –डॉ. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, बलसाड – 1985
2. महाभारत– भाग– 1–6, गीता प्रेस गोरखपुर, तेरहवां संस्करण,संवत – 2067
3. श्रीमद्भगवद्गीता– गीता प्रेस गोरखपुर, पैतींसवाँ –पुनर्मुद्रण–संवत – 2073
4. मनुस्मृति– सं., पं. रामेश्वर भट्ट–चौखंबा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली–पुनर्मुद्रण – 2011
5. श्रीविष्णुपुराण– गीता प्रेस गोरखपुर– अठ्ठावनवाँ पुनर्मुद्रण, संवत – 2077
6. धर्मशास्त्र का इतिहास– 1–6 भाग– डॉ. पी. वी. काणे –उत्तर प्रदेश, हिंदी संस्थान– 1992
7. प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास– डॉ. जयशंकर मिश्र, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना– दशम संस्करण– 2006
8. धर्मशास्त्र का बृहद इतिहास– भाग–1– डॉ. दिलीप कुमार नाथाणी– चौखंभा ओरियंटालिया– दिल्ली, संस्करण – 2019
9. धर्मशास्त्रों का समाज दर्शन– डॉ. गीता रानी अग्रवाल– आदर्श विद्या निकेतन वाराणसी, प्र. स. – 1983
10. हिंदू संस्कार– डॉ. राजबली पांडेय– चौखंबा विद्याभवन, वाराणसी पुनर्मुद्रित संस्करण– 2006
11. याज्ञवल्क्यस्मृति– पं. दुर्गाधर झा, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली– प्र.सं.2002
12. पुराणविमर्श– आचार्य बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी– पुनर्मुद्रित सं.–2010
13. अर्थशास्त्रम्– वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी– पुनर्मुद्रित सं. –2011

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY